दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९६ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २५ अंक नं० ९

सुखी सम्यक्‌वान

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

देखे सुखी सम्यक्‌वान ।टेक ॥

सुख दुःख को दुःखरूप विचारैं, धारैं अनुभव ज्ञान ।देखे० ॥१ ॥

नरक सातवें के दुःख भोगैं, इन्द्र लखैं तिन मान।
भीख मांगकै उदर भरैं न करैं चक्री को ध्यान ।देखे० ॥२ ॥

तीर्थंकर पद को नहीं चावें जपिउदय अप्रमान।
कुष्ट आदि बहु व्याधि दहत न, चहत मकरध्वज थान ।देखे० ॥३ ॥

आधि व्याधि निरबाध अनाकुल, चेतनजोति पुमान।
'द्यानत' मगन सदा तिहिमाहीं, नाहीं देख निदान ।देखे० ॥४ ॥

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जनवरी १९७० वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२९७) एक अंक २५ पैसा [मार्गशीर्ष २४९६

विज्ञप्ति

पूज्य श्री कानजीस्वामी की ८०वीं जन्म-जयंती के उपलक्ष में सोनगढ़ में जो भव्य एवं आदर्श परमागम मंदिर निर्माण कराने का निर्णय किया गया है, उसमें अनेक मुमुक्षुओं की ओर से गाथाएँ उत्कीर्ण कराने के लिये अमुक रकमें लिखवायी जा रही हैं। कुछ भाई-बहिनों ने ऐसी सलाह दी है कि एक-एक गाथा उत्कीर्ण कराने के लिये अमुक रकम तय कर दी जाये तो दान देनेवालों को इस बात का संतोष होगा कि हमने भी इस पवित्र कार्य में अमुक गाथाएँ उत्कीर्ण करवाकर अपना यत्किंचित योगदान दिया है। इस सलाह को ध्यान में लेकर गाथा और उसकी टीका के लिये ५०१) पाँच सौ एक रुपये की रकम निश्चित की गई है।

अभी तक जो रकमें आयी हैं, उनका हिसाब भी एक गाथा-टीका के ५०१) पाँच सौ एक रुपये गिना जायेगा।

जिन मुमुक्षुओं को अपनी ओर से एक पूर्ण गाथा-टीका उत्कीर्ण कराने की भावना हो और जिन्होंने ५०१) पाँच सौ एक रुपये से कम रकम परमागममंदिर हेतु लिखवायी हो, वे बाकी रकम देकर अपनी भावना पूर्ण कर सकते हैं।

लि.—

श्री परमागम मंदिर कमेटी

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल-बम्बई

—००—००—

विज्ञप्ति

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट की ओर से श्राविकाशाला के कम्पाउंड में १६×१० साइज के कमरे बनवाने का निर्णय किया गया है। जो महानुभाव अपने नाम के कमरे बनवाना चाहते हों वे निम्नोक्त नियमों एवं शर्तों पर बनवा सकते हैं:—

(१) प्रत्येक कमरे के लिये २००१) रुपये ट्रस्ट को देना होंगे।

(२) कमरे की मालिकी ट्रस्ट की रहेगी।

(३) कमरा बनवानेवाले या उनके स्वजनों को आना हो तो १५ दिन पूर्व सूचना मिलने पर कमरा खाली करवा दिया जायेगा।

(४) कमरा बनवानेवाले जब सोनगढ़ से बाहर जायें तब कमरा ट्रस्ट को सौंपकर जाना होगा। उन्हें अपना सामान रखने के लिये कमरे में ऊपर मचान बनवाकर व्यवस्था कर दी जायेगी।

लि०-

दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

जनवरी : १९७० ☆ मार्गशीर्ष, वीर नि०सं० २४९६, वर्ष २५ वाँ ☆ अंक : ९

जीव का स्वरूप

जीव का स्वरूप अरूपी ज्ञान-दर्शनमय है। जानने का कार्य होता है, वह जीव का अंश है। 'जैसा अंश, वैसा अंशी'—इसलिये तुम ज्ञानस्वरूप जीव हो। संपूर्ण जीवद्रव्य अरूपी सूक्ष्म ज्ञानस्वरूपी है; उसका क्षेत्र असंख्यप्रदेशी लोकप्रमाण है, वह वर्तमान में संकुचित होकर देह-प्रमाण है। मैं देह हूँ—ऐसा तुम अनादि से मानते हो, तथापि तुम अब भी अरूपी चैतन्यस्वरूपी असंख्यप्रदेशी जीव ही हो, इसका प्रमाण यह है कि तुम अब भी उपयोग (ज्ञान-दर्शन) करते हो। अनादि से इसप्रकार एक ही भावरूप-ज्ञानरूप रहे हो, कभी शरीररूप-जड़रूप नहीं हुए-होगे भी नहीं।

शुभराग की क्रिया में ज्ञान का प्रकाश नहीं

(समयसार, गाथा २०५)

मोक्षार्थी जीवों को ज्ञान का ही सेवन करना चाहिये, इसी में परम सुख है। राग का सेवन करने से कभी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

शुभराग की क्रिया को जो मोक्ष का कारण मानते हैं अथवा मनवा रहे हैं तथा राग से भिन्न ज्ञान का सेवन नहीं करते, वे जीव मोक्ष से विमुख हैं, वे व्यवहार व्रत-तप के राग से चाहे जितना क्लेश—कष्ट सहन करें तो भी अज्ञान के सेवन से किसी भी प्रकार मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते; क्योंकि मोक्ष तो शुद्ध ज्ञानमय पद है, तथा वह तो ज्ञान के द्वारा ही स्वसंवेदन में आयेगा। ज्ञानगुण के बिना उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

'ज्ञानगुण' अर्थात् ज्ञानस्वभाव की अनुभवदशारूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह 'ज्ञानगुण' है, इसमें राग के क्रियाकांड का अभाव है। ज्ञान-अनुभव की क्रिया, यह मोक्ष का कारण है किंतु राग की क्रिया मोक्ष का कारण नहीं।—ऐसे ज्ञानस्वरूप निजपद को पहिचानकर हे जीवो! ज्ञान के द्वारा उसका सेवन करो।

जगत के अनेक जीव अज्ञानी होने के कारण अपने ज्ञानमय निजपद की पहिचान नहीं कर सकते। अज्ञानमय ऐसे रागादि भावों को ही मोक्ष का कारण समझकर सेवन कर रहे हैं। वह राग से रहित ज्ञानपद का अनुभव नहीं करते, इसलिये मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। किंतु जो जीव मोक्षार्थी हैं, वह अपने ज्ञानस्वभाव को पहिचानकर उसी का अवलंबन लें; इसके अनुभव से अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है।

शुभराग के द्वारा ज्ञान का अनुभव होता है ?—कभी भी नहीं हो सकता, कारण कि राग तो ज्ञान से विरुद्ध भाव है। राग की क्रिया में से ज्ञान प्रगट करने की जो इच्छा रखते हैं, उन जीवों को ज्ञानपद की खबर नहीं, वे तो राग में तथा पुण्य में ही संतुष्ट हैं, उसी में लीन हैं। मुमुक्षु! मोक्ष के लिये तू इस ज्ञान का अनुभव करके उस ही में तृप्त हो, ज्ञान में ही संतुष्ट हो तथा ज्ञान में ही लीन हो जा।—ऐसा करने से साक्षात् उत्तम सुख तेरे अनुभव में आयेगा।

राग में ज्ञान का प्रकाश नहीं, चाहे जिस जाति का राग हो, पूजनादिक का हो। पंचमहाव्रत का हो, या गुण-गुणी भेद का हो, किसी भी राग में ज्ञान प्रकाशित नहीं होता, तथा ज्ञान में राग की उत्पत्ति नहीं।—ऐसा भिन्नपना समझकर ज्ञानमात्र आत्मा का अनुभव करना, यही परम सुख है; यही मोक्ष का उपाय है।

सच्चा आत्मा अर्थात् परमार्थ आत्मा तो ज्ञानमय है; ज्ञानमय कहने से सुख-श्रद्धा इत्यादि अनंत गुणों के रस से एकरूप है; किंतु वह रागरूप नहीं। सच्चे आत्मा के अनुभव में ज्ञान प्रकाशित होता है, किंतु उसमें राग का अनुभव नहीं। इसलिये हे जीव! ऐसे आत्मा का अनुभव करने के लिये रागादि से प्रीति छोड़ तथा ज्ञानस्वभाव की ही प्रीति कर—'इसी में सदा प्रीतिवंत बन।' ज्ञानरूप जो अनुभव में आता है, इतना ही सत्य आत्मा है। ज्ञान के अनुभव में राग का प्रवेश नहीं; इसलिये राग वह वास्तव में आत्मा नहीं, अर्थात् कि वह सच्चा आत्मा नहीं, इसलिये उसको 'अनात्मा' कहा है।—तब फिर अनात्मा द्वारा आत्मा की प्राप्ति किसप्रकार हो सकती है? शुभराग से ज्ञान का अनुभव होगा, ऐसा जो मानता है, वह अनात्मा को ही आत्मा मानता है; ऐसे जीव ज्ञानशून्य हैं; राग में ही लीन रहनेवाले जीव कर्म से कभी छूटते नहीं। यह ज्ञानस्वरूप निजपद है, यह कर्म से अर्थात् राग के क्रियाकांड से कभी प्राप्त नहीं होता, यह तो राग से पार सहज ज्ञानकला के द्वारा ही अनुभव में आता है। इसलिये मोक्षार्थी जीव सतत निजज्ञान की कला के पुरुषार्थ द्वारा ज्ञानस्वभाव के अनुभव का अभ्यास करें। बारंबार ज्ञान का ही अभ्यास करना चाहिये। समस्त राग के भिन्न ही भिन्न, ऐसा अत्यंत भेदज्ञान करना चाहिये। सदा ज्ञानमय स्वभाव से परिपूर्ण, ऐसे ज्ञान में तन्मय होकर उसका अनुभव करना चाहिये। बस, ऐसे ज्ञानमात्र कल्याणमय सत्य आत्मा से ही कल्याण है; उसमें आ गया कि—किसी भी राग से जरा भी कल्याण नहीं है।

हे मोक्षार्थी जीवो! तुम ज्ञान का ही अनुभव करो; ज्ञान के अनुभव में ही परम सुख है—ऐसा आचार्यदेव ने २०६ गाथा में कहा है—

इसमें सदा प्रीतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट अरु
इससे ही बन तू तृप्त, तुझको सुख उत्तम होयगा॥

परम शांतिदायिनी

अध्यात्म-भावना

[आत्मधर्म की सरल लेखमाला]

[लेखांक ५५]

देह से भिन्न निजस्वरूप में उपयोग को लगानेवाले मुनियों को कदापि दुःख नहीं है, यह बात बतलायी, और आत्मा, पृथ्वी आदि से उत्पन्न हुआ पदार्थ नहीं है परंतु असंयोगी स्वयंसिद्ध वस्तु है—ऐसा बतलाया। अब, मरणपर्यंत अर्थात् देह का विलय हो जाने पर भी, आत्मा का अस्तित्व बना रहता है—यह बात दृष्टांतरूप से १०१वीं गाथा में कहते हैं—

स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि न नाशोऽस्ति यथात्मनः।
तथा जागरदृष्टेऽपि विपर्यासाविशेषतः॥१०१॥

किसी ने स्वप्न में देखा कि मेरा नाश हो गया है, मेरा शरीर मिट गया है—लेकिन स्वप्न में देखी हुई वह बात सत्य नहीं होती, क्योंकि जागृत अवस्था होने पर अपने को जीवंत ज्यों का त्यों देखता है। स्वप्न में जो कुछ देखा, वह तो विपर्यास और भ्रमणा है। लेकिन अज्ञानी, जागृतदशा में भी देह के नाश से अपना नाश मानता है, वास्तव में यह भी विपर्यास और भ्रमणा है; क्योंकि आत्मा का कभी नाश नहीं होता। जागृत अवस्था में स्वयं जैसा है वैसा ही देह से है। भिन्न चैतन्यदृष्टि से देखे तो आत्मा दूसरे भव में या शरीररहित सिद्ध अवस्था में ज्यों का त्यों नित्य विराजमान है। देह के संयोग-वियोग से आत्मा की उत्पत्ति-मरण मानना यह भ्रमणा है। आत्मा, देह से भिन्न उपयोग-लक्षणवाला है, देह की उत्पत्ति से आत्मा की उत्पत्ति नहीं, उसीप्रकार देह के वियोग से आत्मा का मरण नहीं होता। आत्मा, जन्म-मरण से रहित सत्स्वरूप है।

आत्मा स्वतंत्र सत् वस्तु है। सत् का सर्वथा नाश नहीं होता और सर्वथा नवीन उत्पन्न नहीं होता। लेकिन सत् सदा सत्रूप रहता है और उसकी पर्याय में उत्पाद-व्ययरूप परिवर्तन होते रहते हैं। जैसे—किसी ने स्वप्न में देखा कि मैं मर गया, और जागृत होने पर लोगों से कहे कि भाई! मैं तो मर गया हूँ, तो लोग उसे मूर्ख ही कहेंगे। क्योंकि लोगों के समक्ष जीता-जागता

खड़ा है। जैसे स्वप्न की बात भ्रमणा है; उसीप्रकार देह छूटने से आत्मा का मरण मानना, भ्रमणा है। ज्ञानी कहते हैं कि अरे मूर्ख! चेतनलक्षण आत्मा कभी मरता होगा!! तू आत्मा का नाश मानता है, यह तो देह-बुद्धि के कारण तेरी भ्रमणा ही है। जैसे स्वप्न की बात सत्य नहीं; उसीप्रकार तेरी बात भी सत्य नहीं। आत्मा अपने द्वारा किये हुये परिणामों से स्वर्ग या नरक में जाकर उनका फल प्राप्त करता है और वीतरागता द्वारा मोक्ष प्राप्त होने पर सादि-अनंत सिद्धदशा में रहकर मोक्ष के परम सुख को भोगता है।

आत्मा, देह से भिन्न अविनाशी तत्त्व है। देह के साथ आत्मा का नाश नहीं होता। जिसप्रकार निद्रा में-स्वप्न में यह देखा कि 'मैं मर गया' लेकिन जब जागा, तब अनुभव करता है कि मैं मरण को प्राप्त नहीं हुआ; जो स्वप्न में था, वही मैं हूँ। इसप्रकार अज्ञानदशा में भ्रम से देहात्मबुद्धि के कारण, देह के नाश से आत्मा का नाश होना भासित होता है, लेकिन वास्तव में आत्मा नाश को प्राप्त नहीं होता। आत्मा दूसरे शरीर में या सिद्धदशा में ज्यों का त्यों रहता है, अर्थात् आत्मा सत् है, मोक्ष में भी आत्मा सत् है। नास्तिक लोग ऐसा मानते हैं कि मोक्ष में आत्मा का अभाव है, यदि ऐसा हो तो मोक्ष की इच्छा कौन करे?—अपने अभाव को कौन चाहे? कोई भी अपने अभाव की इच्छा नहीं रखता। सर्व प्राणी मोक्ष को तो चाहते हैं, क्योंकि उसमें आत्मा सदैव परम शुद्ध आनंददशा सहित विराजमान है। किसी भी भव में आत्मा के अभाव की कल्पना करना, वह मिथ्या है। जैसे स्वप्न में आत्मा का नाश दिखायी देता है, वह मिथ्या है; उसीप्रकार जागृत अवस्था में जो आत्मा का मरण दिखायी देता है, वह अज्ञानी का भ्रम है। दोनों में विपर्यास की समानता है। देह का नाश होने पर भी, आत्मा का अस्तित्व ज्यों का त्यों बना रहता है। ऐसे सत् आत्मा की मुक्ति प्रयत्न द्वारा सिद्ध होती है। देह से भिन्न आत्मा का शाश्वतपना जो जानते हैं, उन्हें मरण का भय नहीं रहता। 'हमारा नाश हो जायेगा'—ऐसा भी संदेह उन्हें नहीं होता। किसी भी परिस्थिति में-देह छूटते समय भी, धर्मी जीव अपने भिन्न अस्तित्व का अनुभव करते हैं और आत्मा की ऐसी भावनासहित देह छोड़ते हैं... देह छोड़ते समय भी उनके समाधि होती है ॥१०१॥

अब कहते हैं कि—प्रयत्नपूर्वक आत्मा के भेदज्ञान की भावना करना चाहिये... असह्य दु:ख और किसी भी प्रतिकूलता में आत्मा की भावना नहीं छोड़ना। आत्मा को भिन्न जानकर अति उग्र प्रयत्नपूर्वक उसकी भावना भाते रहना चाहिये। क्योंकि—

अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः ॥१०२॥

दुःख बिना भाया हुआ ज्ञान, उपसर्गादि दुःख के प्रसंगों में नष्ट हो जाता है; इसलिये अपनी शक्ति-अनुसार कायक्लेशादिपूर्वक आत्मा की दृढ़ भावना करनी चाहिये। किसी भी प्रतिकूलता में मुमुक्षु को जागृत रहने का यह उपदेश है। जिसने संसार में बाह्य सुखों की अभिलाषा छोड़कर आत्मभावना भायी है, उन्हें कष्टदायक प्रसंगों पर भी आत्मा की ऐसी भावना बनी रहेगी और यह भावना, तीव्र वैराग्य का रूप धारण कर लेगी। साताशील या प्रमादी न हो जायें; इसलिये यह जागृति का उपदेश है; क्योंकि यदि आत्मा की भावना भूलकर बाह्य सुख-साता में मग्न हो जायें तो ज्ञान का नाश हो जाता है।

आत्मा के श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक ऐसी भावना भाना कि किसी भी प्रतिकूलता में वह उत्तर दे! किसी भी प्रसंग पर वह भेदज्ञान की भावना उपस्थित रहे। जहाँ अन्य कोई उपाय नहीं है, वहाँ अंतर के भेदज्ञान की भावनासहित सहनशीलता, वह अमोघ उपाय है। जहाँ ज्ञान की भावना जागृत है, वहाँ कोई भी प्रतिकूलता साधक को आत्मभावना से विचलित नहीं कर सकती।

अंतर के ज्ञानानंदस्वभाव की ओर उन्मुख होकर ऐसी दृढ़ भावना करनी चाहिये कि समाधि के समय किसी भी प्रकार की प्रतिकूलता के सन्मुख टिका जा सके और मृत्युकाल में भी आत्मा किसी प्रतिकूलता में दब न जाये। आनंद की उग्र भावनासहित समाधिमरण हो। जिसने सातापूर्वक सिर्फ भेदज्ञान की बात की, लेकिन अंतर्मुख होने का प्रयत्न नहीं किया है, उसे प्रतिकूलता के समय भेदज्ञान की भावना नहीं रहेगी। जिसने आत्मा के आश्रय से अंतर्मुख होने का प्रयत्न किया है, उसे किसी भी प्रसंग पर आत्मा की भावना रहेगी। अनुकूल संयोगों में जो मग्न है, और अंतर के अनुभव का प्रयत्न नहीं करता, वह प्रतिकूल संयोगों के समक्ष कैसे टिक सकेगा? उस समय उसका ज्ञान उसे जवाब नहीं देगा।

प्रभो! अपने चैतन्य की संयोग से भिन्न ऐसी भावना भाना कि वह भावना किसी भी प्रतिकूलता में टिक सके। 'देह से आत्मा भिन्न है'—ऐसी साधारण जानकारी में मत रुक जाना, परंतु अंतर में प्रयत्न द्वारा आत्मा का अनुभव और उसकी भावना करना।

आत्म-अनुभव से रहित मात्र धारणा तुझे शरणरूप नहीं होगी। अंतर में भेदज्ञान की

भावना से निर्विकल्प आनंद-रस के पान का ऐसा प्रयत्न करना कि समाधिमरण के समय प्यास से गला सूख जाये और पानी अंदर न उतरे, तब भी अंतर के अनुभव से आत्मा तृप्त रहे।

अष्टप्राभृत की ६२ वीं गाथा में भी कष्टसहनपूर्वक आत्मा की भावना करने का उपदेश है—

सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहाबलं जोई अप्पा दुक्खेदि भावए॥६२॥

सुख से भाने में आया हुआ ज्ञान, दु:ख में नष्ट हो जाता है; अत: यथाशक्ति बलपूर्वक प्रयत्न द्वरा कायक्लेश सहन करके आत्मा का अनुभव करना—ऐसा उपदेश है। आहार-आसन-निद्रा आदि प्रमाद को जीतकर, जिनवर के मत-अनुसार गुरुप्रसाद से आत्मा को जानकर उसे ध्याना।

देहादि से भिन्न आत्मा की भावना करनेवाले मुमुक्षु जीव के अंतर परिणामों में तीव्र उदासीनता, वैराग्य, प्रतिकूलता में सहनशीलता, धैर्य आदि होते हैं। इससे कहते हैं कि हे जीव! तपश्चरणादि वैराग्यभावनापूर्वक तू ज्ञान को भा। ऐसी भावना भा कि चाहे जैसी प्रतिकूलता में वह छूटे नहीं, अखंड आराधना में भंग न पड़े। जो मात्र बाह्य सुखसाता में पड़े हैं और ज्ञान की सिर्फ बातें करते हैं, उन्हें प्रतिकूलता के समय ज्ञानभावना कहाँ से रहेगी? अज्ञानी तो मरण या प्रतिकूलता के प्रसंगों पर भड़क उठते हैं और अपने से भिन्न ज्ञान को भूल जाते हैं। जिसने ज्ञानभावना की, उस ज्ञानी को मरण का भय नहीं होता; प्रतिकूलता में ज्ञानभावना नहीं छूटती। देखो! सुदर्शन सेठ, सीताजी पर कैसे संकट आये, फिर भी वे उन प्रसंगों पर अपनी ज्ञानभावना को भूले नहीं थे; जिन्होंने बार-बार आत्मा के अनुभव का प्रयोग किया है और स्वभाव में रहने का प्रयत्न किया है, उन्हें किसी भी अवसर पर ज्ञानभावना जागृत रहती है। इसलिये दु:ख में सहनशीलता के प्रयत्नसहित ज्ञानस्वभाव की भावना करने का उपदेश दिया है।

समयसार में भी कहते हैं कि—हे जीव! तू मरकर भी तत्त्व का जिज्ञासु हो... मरण-समान कष्ट सहन करके भी, देह से भिन्न आत्मा को अनुभव में ले.... अंतर में उसके अनुभव की अभिलाषा जागृत कर, चैतन्य की रुचि के समक्ष दुनिया की किसी भी प्रतिकूलता को न देख।

मैं आत्मा हूँ, शरीर से पृथक् हूँ—ऐसी सामान्य धारणा की हो, किंतु जिसने अंतर में आत्मा की सच्ची रुचि से भेदज्ञान करके उसकी भावना नहीं भायी, उसे जब तक शरीरादि की अनुकूलता हो, तब तक तो ऐसा लगता है कि ज्ञान है; परंतु जहाँ शरीर में कष्ट हो, मरण का अवसर आये या कोई दूसरे निंदा-अपमान आदि प्रतिकूलता के प्रसंग आयें, तब उसकी धारणा नहीं रहेगी और प्रतिकूलता के वेदन में फँस जायेगा। इसलिये यहाँ पर ऐसा उपेदश है कि अभी से देहादि के प्रति उदासीनता की भावनापूर्वक तू ज्ञान का अभ्यास कर।

जिसे अनुकूलता का जितना प्रेम होता है, उसे प्रतिकूलता में उतना ही द्वेष हुए बिना नहीं रहता, ज्ञानी तो आत्मा को दोनों से पृथक् जानकर पल-पल उसी की भावना करते हैं। ज्ञान की सच्ची भावना भायी होगी तो वह विशेष प्रसंग पर उपस्थित होगी और आत्मा को समाधि-समाधान-शांति प्रदान करेगी। जीवन में जिसने आत्मा की दरकार नहीं की, उसकी भावना नहीं की और कहे कि मैं मरण समय समाधि रखूँगा, तो वह समाधि कहाँ से रखेगा? जैसे किसी ने अपने जीवन में बंदूक हाथ में न ली हो और न निशाना लगाना जानता हो, वह लड़ाई में दुश्मन के समक्ष किसप्रकार खड़ा रहेगा? जिंदगी में अभ्यास किया होगा, उसे समय पर काम आयेगा। इसलिये हे भाई! प्रमाद छोड़कर दृढ़ वैराग्यपूर्वक आत्मा की भावना भा!

जिसप्रकार दीक्षा के समय संसार-भोगों को तुच्छ जानकर अत्यंत वैराग्य पैदा होता है; उसीप्रकार किसी तीव्र रोग या मृत्यु की संभावना के प्रसंग पर जागृत हुई उत्तम भावना का स्मरण करके विशुद्धभाव से उत्तम बोध का सेवन करना... ऐसी दृढ़ भावना करना कि केवलज्ञान तक अखंड रहे। अरे जीव! भेदज्ञान करके अपने ज्ञान को अंतर्मुख करना... बारंबार ज्ञान को अंतर में एकाग्र करने का अभ्यास करना! रोम-रोम में अर्थात् आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में ज्ञान का परिणमन हो जाये—ऐसा दृढ़ अभ्यास करना, विषयों के ओर की प्रवृत्ति छोड़कर चैतन्य का रस इतना बढ़ाना कि स्वप्न में भी, अथवा प्राण जायें तो भी शिथिलता न आये और ज्ञान, धारावाहीरूप से टिका रहे—ऐसे दृढ़ ज्ञानभाव का उपदेश है ॥१०२॥

ज्ञानी किन भावों द्वारा पहिचाना जाता है ?

बन्धभाव द्वारा ज्ञानी नहीं पहिचाना जाता....
मुक्तभाव के द्वारा ज्ञानी पहिचाना जाता है।

ज्ञानी कैसे भावों में स्थित है तथा अज्ञानी कैसे भावों में स्थित है, इन दोनों को अत्यंत भिन्न पहिचानना, इसका नाम निपुणता है। ऐसी निपुणता के द्वारा अज्ञान को छोड़कर तुम ज्ञानीपने का सेवन करो, अर्थात् कि राग का अकर्ता बन कर ज्ञानभावरूप परिणमन करो—ऐसा उपदेश है।

(कलश टीका प्रवचन : कलश १९७-१९८)

जीव ज्ञानस्वरूप होने पर भी, अज्ञान भाव से भावकर्म का कर्ता-भोक्ता होता है। यह कर्ता-भोक्तापना आत्मा का स्वभाव नहीं; इसलिये उसको मिटाने के लिये वस्तुस्वरूप का उपदेश दिया है। आचार्यदेव कहते हैं कि हे निपुण पुरुषों! तुम भेदज्ञान में निपुण बनकर चैतन्यप्रकाश में मग्न हो जाओ तथा रागादि का कर्ता-भोक्तापना को छोड़ो।

पौद्गलिक प्रकृति-स्वभाव में अर्थात् राग-द्वेष में ही अज्ञानी मग्न है। तथा ज्ञानी तो चैतन्यस्वभाव में मग्न होने से वह राग-द्वेष से विरक्त है। शुद्ध चैतन्य में रागादि का कर्ता-भोक्तापना नहीं है, अर्थात् शुद्ध चैतन्य का अनुभव करनेवाला जीव रागादि का कर्ता-भोक्ता नहीं होता; अशुद्ध आत्मा का अनुभव करनेवाला मिथ्यादृष्टि ही रागादि का कर्ता-भोक्ता होता है। इसी प्रकार पहिचानकर मुमुक्षु जीव अज्ञानीपना छोड़कर ज्ञानीपने का सेवन करते हैं। किसप्रकार ज्ञानीपने का सेवन करते हैं ?—कि शुद्ध चैतन्य तेज में मग्न होकर सम्यक्त्वादिरूप परिणमन करते हैं, इसप्रकार ज्ञानी होकर रागादि का अकर्ता होता है।

अहा! चैतन्य के आनंद का स्वाद चखे, उसी को परभाव का कर्ता-भोक्तापन रहता नहीं। अज्ञानी अकेले रागादि विकार के स्वाद का ही अनुभव करता हुआ चैतन्य के आनंद-स्वाद को जानता नहीं; अर्थात् उस ही को अशुद्धभाव से परभाव का कर्ता-भोक्तापना है। मिथ्यादृष्टि के परिणमन का ऐसा स्वभाव है कि रागादिक में एकत्वबुद्धिरूप परिणमन करता

है। ज्ञानी सम्यग्दृष्टि का ऐसा स्वभाव है कि वह अपने शुद्धचैतन्य का ही स्वामी बनकर परिणमन करता है, अशुद्ध भावों में एकत्वबुद्धिरूप परिणमन नहीं करता। ऐसे सम्यग्दृष्टि को सिद्ध समान कहा गया है। मिथ्यात्व यह संसार, मिथ्यात्व दूर होते ही जीव अपने को शक्ति में सिद्ध सदृश अनुभव करता है।

शुभराग के समय अज्ञानी राग का ही अनुभव करता है, किंतु ज्ञानरूप अपने को अनुभव नहीं करता, इसलिये राग का कर्ता-भोक्ता है। ज्ञानी को राग के समय भी अपने को राग से भिन्न ज्ञानमय पहिचानता है, अर्थात् वह राग का कर्ता-भोक्ता नहीं। ज्ञानी ज्ञानस्वभाव में लीन है तथा राग से विरक्त है अज्ञानी अज्ञान में लीन है तथा ज्ञान से विरक्त हे। ज्ञानी के ज्ञानपरिणमन में रागादि का कर्तृत्व नहीं। अज्ञानी के अज्ञान-परिणाम में ही रागादि का कर्तृत्व है। यहाँ तो कहते हैं कि रागादि के कर्तृत्वरूप अज्ञानभाव, यही संसार है। तथा राग के कर्तृत्व से छूटा हुआ ज्ञानमयभाव वह मुक्तिस्वरूप है। सिद्धभगवान जिसप्रकार विकार के कर्ता नहीं; इसीप्रकार सम्यग्दृष्टि भी विकार को तन्मयता से करता नहीं; उससे तो वह विभक्त ही है। उपयोग लक्षणरूप आत्मा विकार को किसप्रकार करे ?

जितने रागादिभाव हैं, वह सभी कर्म की तरफ के भाव हैं; आत्मा के स्वभाव के तरफ के भाव नहीं। आत्मा के स्वभाव तरफ के भाव तो ज्ञानमय है। इसप्रकार दोनों भावों को भिन्न जानते हुए निपुण जीव रागादि का कर्तृत्व छोड़कर ज्ञानरूप ही परिणमन करते हैं, तथा अज्ञान को छोड़ते हैं। ज्ञानभाव कहीं विकाररूप परिणमन नहीं करता, इसलिये ज्ञानी के ज्ञानभाव में विकार का कर्तृत्व है ही नहीं।

जो अपने में राग का ही कर्तृत्व अनुभव करता है, उसने शुद्ध आत्मा को देखा नहीं। इसीप्रकार सामने ज्ञानी आत्मा को जो राग का कर्तापने देखता है, उसने ज्ञानभाव से परिणमन करते हुए ज्ञानी को पहिचाना ही नहीं, ज्ञानी को उसने देखा नहीं, राग को ही देखता है। भाई! तुझे ज्ञानी की पहिचान करना हो तो संयोग से तथा राग से भिन्न ऐसे ज्ञान को देख। ज्ञानी तो ज्ञानभाव में वर्तते हैं, रागादि भाव में वर्तता नहीं। रागादि अशुद्ध भाव तो ज्ञान से भिन्न पड़े हुए हैं। तुझे ज्ञानी को देखना हो तो राग के अकर्तृत्व को देख! राग के कर्तृत्व को देखने से तुझे ज्ञानी दिखाई नहीं देंगे; उनमें तो राग ही दिखलाई देगा।

सम्यग्दृष्टि कहो या ज्ञानी कहो; वह क्या करे! वह केवल जानता है अर्थात् कि मात्र ज्ञानरूप ही परिणमन करता है। ज्ञान ही मैं हूँ—ऐसा वेदन करता है, किंतु रागादि अशुद्ध भावों

को करता या भोक्ता नहीं। इसप्रकार राग रहित का अकेला ज्ञान, वह मुक्तस्वरूप है, इसलिये 'स हि मुक्त एवं' वह ज्ञानी मुक्त ही है। ज्ञान में बंधन किसप्रकार हो? बंधन तो अज्ञान से या राग से होता है; किंतु इनसे तो ज्ञानी पृथक् हो गया है।

राग तथा ज्ञान की भिन्नता को जो पहिचानता है, वह राग का कर्ता-भोक्ता नहीं होता, किंतु शुद्ध स्वभावरूप परिणमन करता हुआ ज्ञान का ही कर्ता होता है, ज्ञान के साथ आनंद का वेदन है। रागादि को अपने से भिन्न भी माने तथा उनका कर्ता-भोक्ता भी हो—ऐसा हो सकता नहीं। जिसका कर्ता-भोक्ता बने, उससे स्वयं की भिन्नता किसप्रकार पहिचाने? राग का कर्ता-भोक्ता हो, उसने राग से स्वयं की भिन्नता नहीं पहिचानी।

अहो, यहाँ तो कहते हैं कि जैसे निर्विकार सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही निर्विकार सम्यग्दृष्टि हैं; क्योंकि सम्यग्दृष्टि का ज्ञान भी अशुद्धता के कर्ता-भोक्ता से रहित हुआ है। देखो, इस चौथे गुणस्थान के धर्मी की यह दशा! अभी तो आत्मा जड़ की क्रिया करता है तथा इससे धर्म होता है—यह बात कहाँ गई। यहाँ तो कहते हैं कि शरीर की तथा उसकी क्रिया तो आत्मा में है ही नहीं, राग की क्रिया भी ज्ञान में नहीं। ज्ञान की क्रिया ही आत्मा की क्रिया है। वह ज्ञान-क्रियारूप परिणमन करता हुआ ज्ञानी सिद्ध भगवान की तरह रागादि का अकर्ता है। इस अकर्तापने की अपेक्षा से उनको मुक्त ही कहा है।

ज्ञानी के अंतरंग में शुद्ध परिणमन राग से पार है। उस शुद्धता को अज्ञानी देखता ही नहीं; क्योंकि स्वयं की परिणति राग से भिन्न नहीं हुई। ज्ञानी की परिणति राग से भिन्न होकर शुद्ध चैतन्य के आनंद को भोगने में मग्न हो गई है। यह शुद्ध परिणति की अपेक्षा से रागादि परभाव हैं, वह परद्रव्य की सामग्री है, वह शुद्ध चैतन्यवस्तु की सामग्री नहीं, इससे रहित शुद्ध चैतन्य का अनुभव करता हुआ ज्ञानी 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' ऐसा अनुभव करता है।

सिद्ध भगवान में राग का अंश भी नहीं, और यह कहे कि मैं राग को करूँ तथा राग से मुझे धर्म होगा—तो उसने स्वयं को सिद्ध समान नहीं माना। सिद्ध भगवान राग से रहित, तथा यह कहे कि में राग के द्वारा सिद्धपद की साधना करूँ—तो इसी ने तो सिद्ध भगवान से विरुद्ध अपना स्वरूप माना। भाई! जिसप्रकार सिद्ध भगवान में राग नहीं, उसीप्रकार इस आत्मा के स्वरूप में भी राग नहीं, राग का कर्ता-भोक्तापना ज्ञान में नहीं, ऐसा अनुभव में ले तो तू सिद्ध के मार्ग पर चलनेवाला है। अन्यथा राग के द्वारा सिद्ध के मार्ग पर चला नहीं जा सकता।

अहो, धर्मी के अंदर के अनुभव की यह अलौकिक बात है।

कितने ही मानव कहते हैं कि—चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को अतीन्द्रिय सुख का वेदन नहीं होता; यहाँ तो आचार्यदेव कहते हैं कि चौथे गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टि मुक्त ही है—सिद्ध जैसा ही है। सिद्ध की तरह रागादि भावों से पृथक् होकर ज्ञान का अनुभव करता हुआ अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करता है। राग शेष रहा है, उसको ज्ञानी के साथ सम्मिलित नहीं करता, किंतु अपने स्वरूप से भिन्न है, ऐसा उसको जानता है। ऐसे आत्मा का अनुभव हुए बिना मोक्षमार्ग होता नहीं।

यह वस्तुस्वभाव के नियम हैं। ऐसे नियम को पहिचाने नहीं तथा अन्य प्रकार से (अर्थात् राग से) धर्म करने जावे तो वह जीव वस्तुस्वभाव के नियम को भंग करता है अर्थात् अपराधी है, आत्मा में तो ज्ञान-आनंद तथा सुख भरे हुए हैं, किंतु कहीं उसमें राग-द्वेष या दुःख नहीं भरे हैं। इसलिये शुद्ध आत्मा के अनुभव में धर्मी को आनंद ही का भोक्तापना है, राग-द्वेष दुःख का कर्ता-भोक्तापना नहीं; इस कारण से धर्मी जीव मुक्त है। जिसप्रकार सिद्ध भगवान राग से भिन्न है, उसीप्रकार यह धर्मी भी तत्त्वदृष्टि द्वारा राग से भिन्न ही है।—ऐसी दशा का नाम धर्म है तथा ऐसे भावों के द्वारा धर्मी पहिचाना जाता है। ऐसी पहिचान करके हे निपुण जीवो! तुम ऐसे ज्ञानीपन का सेवन करो। ●

वैराग्य समाचार

बम्बई निवासी श्री पंडित हिम्मतभाई जोबालिया के पूज्य पिताजी तथा श्री ब्रह्मचारी चन्दुभाई के पितामह श्री छोटालालजी जोबालिया का स्वर्गवास ८९ वर्ष की आये में तारीख २५-१२-६९ को बम्बई में उनके निवासस्थान पर हो गया।

स्व० श्री छोटालालजी पिछले ३० वर्ष से सोनगढ़ में पूज्य श्री कानजीस्वामी की छत्रछाया में रहकर निवृत्त जीवन बिताते हुए धर्मश्रवण करते थे। जब श्री कानजीस्वामी स्थानकवासी संप्रदाय में थे, तभी से आपको उनके प्रति अनन्य भक्ति थी और जब स्वामीजी ने परिवर्तन किया, तब से आपने भी दिगम्बर जैनधर्म अंगीकार कर लिया था। आपके पाँच पुत्रों एवं उनका समस्त परिवार पूज्य कानजीस्वामी का अनन्य भक्त है। अंत समय में आपने आत्मचिंतनपूर्वक देहत्याग किया। आपका आत्मा वीतरागी देव-गुरु-धर्म की शरण लेकर आत्महित साधे, ऐसी मंगल कामना है।

सम्यग्दर्शन प्रगट करना सुगम है

[आत्म-अनुभव की उत्तम प्रेरणाप्रद यह प्रवचन पूज्य बेनश्री-बेन द्वारा लिखित समयसार के प्रवचनों में से लिया गया है।]

भेदज्ञान की प्रेरणा देनेवाला यह उत्तम श्लोक है:—

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्
अनुभव भवमूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसन्तं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्॥२३॥

श्री आचार्यदेव कोमल संबोधन द्वारा कहते हैं कि भैया! तू किसी भी तरह के महाकष्ट से अथवा मर के भी तत्त्वों का कौतूहली होकर इन शरीरादि मूर्त द्रव्यों का एक मुहूर्त (दो घड़ी) पड़ोसी होकर आत्मा का अनुभव कर कि जिससे अपने आत्मा को विलास रूप, सर्व परद्रव्यों से भिन्न देखकर, इन शरीरादि मूर्तिक पुद्गलद्रव्यों के साथ एकत्वपन के मोह को तू तुरंत ही छोड़ेगा।

मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व का नाश कैसे हो? और अनादि की विपरीत मान्यता व मिथ्या पाप कैसे हटे? उसका उपाय बताते हैं।

आचार्यदेव कठोर संबोधन करके नहीं कहते हैं, परंतु कोमल संबोधन करके कहते हैं कि अरे भैया! क्या यह तुझे शोभा देता है? कोमल संबोधन द्वारा जगाते हैं कि हे जीव! तू किसी भी तरह-महाकष्ट से या मरके भी अर्थात् मृत्यु जितना कष्ट आये तो भी, वह सब सहन करके भी, तत्त्व का कौतूहली बन!

जैसे कूप में गहरी डुबकी लगाकर थाह ले आता है, वैसे ही ज्ञान से भरपूर चैतन्य कूप में से पुरुषार्थरूप गहरी डुबकी लगाकर आनंदरूप तल की थाह ला! विस्मयता ला, दुनिया की चिंता छोड़! दुनिया एकबार तुझे पागल कहेगी, मूर्ख भी कहेगी। दुनिया में अनेक प्रकार की प्रतिकूलता आये तो भी उसको सहन करके, उसकी उपेक्षा करके, चैतन्य कैसा है? उसे देखने का एक बार कौतूहल कर! यदि दुनिया की अनुकूलता या प्रतिकूलता में रुक गया तो अपने

चैतन्य भगवान को तू नहीं देख सकेगा, अतः दुनिया का लक्ष छोड़कर और उससे अकेला होकर, महान कष्ट हो तो भी एक बार तत्त्व का कौतूहली बन।

जैसे भूत और बेंत दोनों का किसी भी प्रकार मेल नहीं मिलता, वैसे ही जिसको आत्मा की पहचान करनी हो, उसका और जगत का कोई मेल नहीं। आचार्यदेव कहते हैं कि हे बन्धु! तू चौरासी के कुएँ में पड़ा है, उसमें से निकलने के लिये चाहे जितने परीषह या उपसर्ग आयें, मृत्यु जितने कष्ट भी आ जायें तो भी उसकी चिन्ता छोड़कर पुण्य-पापरूप विकारी भावों का दो घड़ी पड़ौसी बन, तुरंत ही चैतन्यदल तुझे भिन्न दिखायी देगा। ''शरीरादि और शुभाशुभभाव, यह सब मेरे से भिन्न हैं और मैं इनसे भिन्न हूँ—पड़ौसी हूँ,'' इस तरह एक बार उनका पड़ौसी होकर आत्मा का अनुभव कर।

सच्ची समझ द्वारा निकट में रहे पदार्थों से अत्यंत भिन्न, ज्ञाता-दृष्टा हूँ; शरीर, वाणी, मन वह सब बाहर के नाटक हैं, उनको नाटकस्वरूप देख। तू उनका साक्षी है, स्वाभाविक अंतरज्योति की सहज ज्ञानभूमिका की सत्ता में, जो यह सब दिखाई देता है—वह मैं नहीं हूँ, परंतु उनको जाननेवाला ही मात्र मैं हूँ—इस तरह स्वतत्त्व को समझ तो सही। और उसको जानकर उसमें लीन तो हो! आत्मा में श्रद्धा, ज्ञान और लीनता प्रगट होती है, उसका आश्चर्य लाकर एक बार परद्रव्य का पड़ौसी तो बन।

जैसे मुलसमान का घर और बनिये का घर पास-पास हो तो भी बनिया उसका पड़ौसी होकर ही रहता है, परंतु वह मुसलमान के घर को अपना नहीं मानता, वैसे तू भी चैतन्यस्वभाव में लीन होकर परपदार्थों का दो घड़ी पड़ौसी बनकर, आत्मा का अनुभव कर।

शरीर, मन, वाणी की क्रिया तथा पुण्य-पाप के परिणाम, वे सब पर हैं। उल्टे पुरुषार्थ द्वारा पर का स्वामित्व माना है, विकारी भाव की ओर तेरा बाह्य लक्ष है, वह सब छोड़कर, स्वभाव में श्रद्धा, ज्ञान व लीनता कर, एक अंतर्मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी भिन्न पड़कर चैतन्यमूर्ति को भिन्न देख। उस आनंद को अंदर में देखते ही शरीरादि के मोह को तू तुरंत ही छोड़ सकेगा। 'झटिति' अर्थात् झटपट छोड़ सकेगा। यह बात सरल है, क्योंकि यह तेरे स्वभाव की है। केवलज्ञान-लक्ष्मी को स्वरूप सत्ता भूमि में लीन होकर देख, तो पर का मोह झटपट छोड़ सकेगा।

तीन काल-तीन लोक की प्रतिकूलता का ढेर एकसाथ सामने आकर खड़ा रहे तो भी

मात्र ज्ञातापनरूप रहकर, वह सब सहन करने की शक्ति आत्मा के ज्ञायकस्वभाव की एक समय की पर्याय में है। शरीरादि से भिन्नरूप आत्मा को जाना, उसे वह परिषहों का ढेर भी असर नहीं कर सकता अर्थात् चैतन्य अपने व्यापार से नहीं डिगेगा।

कोई जीवित राजकुमार को—कि जिसका शरीर अति कोमल है उसका—जमशेदपुर के बड़े कारखाने की धधकती भट्ठी में एकदम डाल दे और उसको जो दुःख हो, उससे अनंत गुना अधिक दुःख पहले नरक में है; पहले नरक से दूसरे, तीसरे आदि नरकों में एक-एक से अनंत दुःख है। ऐसी अनंत दुःख की प्रतिकूलता में पड़ा, महाघोर पाप करके वहाँ गया जीव, तीव्र वेदना के ढ़ेर में पड़ा होने पर भी, कभी किसी को ऐसा विचार आये कि अरे रे! ऐसी वेदना! ऐसी पीड़ा!! ऐसा विचार करते, स्वसन्मुख होते ही सम्यग्दर्शन हो जाता है। वहाँ सत्समागम नहीं है, परंतु पूर्व में एक बार सत्समागम किया था, सत् का श्रवण किया था और वर्तमान सम्यक् विचार के बल से, सातवें नरक की महातीव्र पीड़ा का लक्ष छूटकर स्व-द्रव्य के आलंबन द्वारा सम्यग्दर्शन होता है। आत्मा का वेदन होता है! सातवें नरक में रहते हुए सम्यग्दर्शन प्राप्त जीव को वह नरक की पीड़ा असर नहीं कर सकती, यह तो मेरे स्वाान के सामने ज्ञेयमात्र है, ऐसा जानता है। क्योंकि उसको ध्यान है कि मेरे ज्ञानस्वरूप चैतन्य का कोई परपदार्थ कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसी अनंती वेदना में पड़े होने पर भी आत्मा के अनुभव को प्राप्त किया है। अरे, सातवें नरक जितनी पीड़ा तो यहाँ नहीं है न? मनुष्यपना पाकर बहाने क्यों बनाया करता है? अब सत्समागम से आत्मा की पहिचान कर, आत्मानुभव कर। आत्मानुभव का ऐसा माहात्म्य हे कि परीषह आये तो भी डिगे नहीं, और दो घड़ी स्वरूप में लीन हो जाये तो पूर्ण केवलज्ञान प्रगट करे, जीवनमुक्त दशा हो जाये अथवा मोक्षदशा हो जाये, तो फिर मिथ्यात्व का नाश कर सम्यग्दर्शन प्रगट करना तो अति सुगम है।

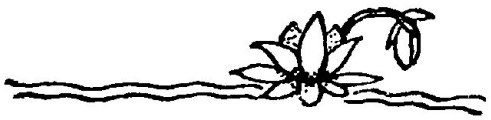

परम शांतिदायिनी

अध्यात्म-भावना

[आत्मधर्म की सरल लेखमाला]

[लेखांक अन्तिम - ५६]

भगवान श्री पूज्यपादस्वामी रचित समाधिशतक पर पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों की यह लेखमाला इस अंक में पूर्ण होती है। अत्यंत सुगम शैली से वैराग्यपूर्वक भेदज्ञान और समाधि की प्रेरणा इस शास्त्र में तथा इन प्रवचनों में भरी है। सुगम शैली के अध्यात्म-लेखों के लिये अनेक जिज्ञासुओं की भावना होने से, यह लेखमाला प्रारंभ की गई थी और जिज्ञासुओं ने भी पढ़के अति उत्साह बताया था। शास्त्रकर्ता आचार्यदेव का थोड़ा परिचय लेखमाला के अंतिम भाग में दिया है। यह समाधिशतक शास्त्र गुजराती भाषा में अर्थ सहित सोनगढ़ से प्रकाशित हो चुका है।

(वीर संवत् २४९२ श्रावण शुक्ला पूर्णिमा)

आत्मा और शरीर के निमित्त-नैमित्तिक संबंध के कारण अनेकबार जीवों को इच्छानुसार देहादि क्रिया होती देखकर ऐसा भ्रम न करना चाहिये कि आत्मा के कारण शरीर का यंत्र चलता है। परंतु आत्मा को देह से भिन्न ही जानना चाहिये। आत्मा में देह का आरोप नहीं करना चाहिये। देह से भिन्न आत्मा की भावना करके एकाग्र होना चाहिये—जिससे परमपद की प्राप्ति हो—ऐसा दो गाथाओं में कहते हैं।

प्रयत्नादात्मनो वायुरिच्छाद्वेषप्रवर्तितात्।
वायोः शरीरयंत्राणि वर्तन्ते स्वेषु कर्मसु॥१०३॥
तान्यात्मनि समारोप्य साक्षाण्यास्तेऽसुखं जडः।
त्यक्त्वाऽरोपं पुनर्विद्वान प्राप्नोति परमं पदम्॥१०४॥

आत्मा में राग-द्वेषरूप इच्छा का प्रयत्न होने पर, उसके निमित्त से एक तरह की वायु शरीर में उत्पन्न होती है और उस वायु के संचार से शरीररूपी यंत्र अपने कार्य में प्रवर्तता है। वहाँ उस देह के कार्यों में आत्मा का आरोप करके अज्ञानी उसे आत्मा ही की क्रिया मानता है। परंतु यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि देह की क्रिया में आत्मा का आरोप करना, वह तो मूर्ख-बहिरात्मा का कार्य है। ज्ञानी तो शरीर की क्रिया में आत्मा की कल्पना छोड़कर, देह से भिन्न चिदानंदस्वरूप आत्मा की भावना भाकर परमपद को प्राप्त होता है। राग, ज्ञान और शरीर की क्रिया भिन्न-भिन्न अपने-अपने कारण से होती हैं, अज्ञानी ऐसा नहीं मानता। शरीर और इन्द्रियों की क्रिया मानों मैं ही करता हूँ—इसप्रकार अज्ञानी जीव, भ्रम से जड़ की क्रियाओं को आत्मा की ही क्रियाएँ मानता है; अत: वह जड़बुद्धि बहिरात्मा इन्द्रिय-विषयों के जाल में ही फँसा रहता है, और दु:खी होता है, देह की क्रिया में राग-द्वेष करता हुआ दु:खी होता है और चैतन्य में स्थिरता नहीं करता। ज्ञानी-विवेकी-अंतरात्मा तो शरीर और इन्द्रियों की क्रिया से अपने को स्पष्ट भिन्न जानकर, चैतन्यस्वरूप आत्मा की भावना में एकाग्र होकर परमपद को प्राप्त होता है।

अज्ञानी पर विषयों से अपने को सुख-दु:ख मानकर उन्हीं में लीन रहता है। ज्ञानी तो जानता है कि सर्व द्रव्य दूसरे से असहाय हैं, कोई किसी को राग-द्वेष में प्रेरित नहीं करता। छहों द्रव्य सदा अपने-अपने स्वरूप में प्रवर्तन कर रहे हैं।

जीव की इच्छा हो और गमन करे, तब वहाँ शरीर भी साथ चलता है, जीव की इच्छा हो, भाषा भी कई बार वैसी ही निकले—ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध है परंतु दोनों की क्रिया भिन्न है, दोनों के लक्षण भिन्न हैं, ऐसा नहीं जाननेवाला अज्ञानी 'मैं ही शरीर को चलाता हूँ—मैं ही भाषा बोलता हूँ' इसप्रकार देह में अपना आरोप करता है, और इसलिये देह संबंधी विषयों में वह सुख मानता है, परंतु भिन्न आत्मा को जाननेवाला ज्ञानी तो उस आरोप को झूठा समझकर, देह से भिन्न अंतरात्मा को अनुभवता है और आत्मा में देह का आरोप छोड़कर, परम पद को प्राप्त करता है।

इसप्रकार भेदज्ञान द्वारा भिन्न लक्षण की पहिचानपूर्वक शरीर और आत्मा का एक-दूसरे में आरोप छोड़कर, और निमित्त-नैमित्तिक संबंध का भी लक्ष छोड़कर; देह से भिन्न आत्मा के अनुभव में एकाग्रता करना, वही आनंदमय परमात्मपद की प्राप्ति का उपाय है, वही समाधि है ॥१०४॥

परमात्मपद की प्राप्ति का मार्ग बतानेवाले इस समाधितंत्र को जानकर परमात्मनिष्ठ जीव परम सुख को पाता है—ऐसा अंतिम श्लोक में शास्त्र का फल बताकर अंत मंगल करते हैं:—

मुक्त्वा परत्र परबुद्धिमहंधियं च,
संसार-दुःखजननीं जननाद्विमुक्तः।
ज्योतिर्मयं सुखमुपैति परात्मनिष्ठ-
स्तन्मार्गमेतदधिगम्य समाधितंत्रम्॥१०५॥

भेदज्ञान द्वारा जिसकी प्राप्ति होती है, ऐसे परमपद की प्राप्ति का मार्ग यह समाधितंत्र बतलाता है। जिससे समाधि, अर्थात् परमसुख प्राप्त हो—ऐसा उपदेश इस समाधितंत्र में है। उसको जानकर क्या करना? तो कहते हैं कि संसार-दुःख की जननी ऐसी जो स्व-पर में एकत्वबुद्धि है, उसको छोड़ना और उत्कृष्ट आत्मस्वरूप में स्थिर होना। देह में आत्मबुद्धि और आत्मा में देहबुद्धि—ऐसी जो स्व-पर की एकत्वबुद्धि है, वह संसार के दुःख की जननी है। मिथ्याबुद्धि ही संसार का मूल है। इस शास्त्र के उपदेशानुसार, उस मिथ्याबुद्धि को छोड़कर, देह से भिन्न आत्मा को जानकर, उसमें जो स्थिर होता है, वह अंतरात्मा इस संसार के जन्म-मरण से मुक्त होकर, परम केवलज्ञानज्योतिमय सुख को पाता है। ऐसा इस शास्त्र का उत्तम फल है—वही मंगल है।

'समाधितंत्र' अर्थात् चैतन्यस्वरूप में एकाग्रता द्वारा परम उदासीनता का उपदेश। अनेक प्रकार के दृष्टांतादि द्वारा स्पष्ट करके देह और आत्मा की अत्यंत भिन्नता बताई है—ऐसी भिन्नता जानकर, देहबुद्धि छोड़कर, परम आत्मस्वरूप में जो स्थिर होता है, वह परमसुख को अनुभवता है। देखो! ऐसा भेदज्ञान करके स्वरूप में स्थिर रहना, वह शास्त्र पढ़ने का फल है। ऐसा जिसने किया है, उसी ने वास्तव में शास्त्र पढ़ा है। अपने में भाव प्रगट किये बिना मात्र पढ़ जाने से ही शास्त्र का फल नहीं आता। शास्त्र का फल तो परम वीतरागता और सुख है।

समयसार के अंत में उत्तम फल बताते हुए श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है कि—

जो समयपाहुडमिणं पठिहूणं अत्थतच्चओ णाउं।
अत्थे ठाही चेया सो होही उत्तमं सोक्खं॥

आत्मस्वरूप में स्थिर होने पर, परमसुख की अनुभूति होती है-यही सर्व शास्त्रों का

सार है। यहाँ भी आत्मस्वरूप में स्थिरता से सुख होता है—ऐसा इस शास्त्र का फल बताकर मंगलपूर्वक शास्त्र पूर्ण होता है।

इस शास्त्र के कर्ता श्री पूज्यपादस्वामी महासमर्थ दिगंबर संत थे। वे विक्रम संवत् की छठवीं शताब्दी में (आज से लगभग १५०० वर्ष पूर्व) इस भारतभूमि को शोभायमान करते थे। अपनी अगाध बुद्धि के कारण वे 'जिनेन्द्रबुद्धि' ऐसे नाम से भी लोक में प्रसिद्ध थे। उनका मूल नाम 'देवनन्दि' था और देवों द्वारा भी उनके चारण (पाद) पूजित (पूज्य-पाद) थे। 'श्रवणबेलगोल' के पहाड़ पर उनकी महिमा संबंधी अनेक शिलालेख हैं। 'तत्वार्थसूत्र' की सबसे प्रसिद्ध 'सर्वार्थसिद्धि' नामक महान टीका भी उन्हीं ने रची है। तदुपरांत 'जैनेन्द्र व्याकरण' नामक महान शब्दशास्त्र भी उन्हीं ने रचा है। इसलिये 'शब्दाब्धीन्दु...' अर्थात् शब्दरूप समुद्र को उछालने में चंद्रसमान—ऐसा विशेषण देकर श्री पद्मप्रभमुनिराज ने 'नियमसार' की टीका के मंगलाचरण में उनको वंदन किया है। 'आदिपुराण' में जिनसेनस्वामी ने तथा ज्ञानार्णव में शुभचंद्राचार्य ने भी उनका स्मरण करके नमस्कार किया है। उन्होंने 'इष्टोपदेश' नामक शास्त्र भी रचा है। उनके द्वारा रचित 'सिद्धभक्ति'—जो कि मात्र नौ श्लोक की है, वह भी बहुत गंभीर अर्थों से भरपूर है; और सिद्ध का सुख आदि का स्वरूप तथा सिद्धि की प्राप्ति का मार्ग सुंदर शैली से बताया है, यह उनके संक्षेप में गागर में सागर भर देने की अगाध शक्ति को सूचित करता है। तदुपरांत उनको अनेक ऋद्धि-लब्धियाँ होने का भी माना जाता है। ऐसे समर्थ अध्यात्ममस्त संत द्वारा यह समाधि-शतक रचा गया है। श्री प्रभाचंद्रस्वामी ने इसकी संस्कृत में सुगम टीका की है। शास्त्र में बराबर भेदज्ञान की भावना घूंटी है, और आत्मा को समाधि-सुख हो, ऐसा उपदेश दिया है।

इस शास्त्र पर ज्येष्ठ कृष्णा प्रतिपदा से प्रारंभ हुए प्रवचन आज श्रावण शुक्ला पूर्णिमा (वीर संवत् २४८२) वात्सल्य दिन को पूर्ण होते हैं। ये भव्य जीवों को आत्मिक-सुखरूप परम समाधि प्रदान करें।

जिनके भक्ति प्रसाद से, पूर्ण हुआ व्याख्यान,
सबके उर मन्दिर वसो, पूज्यपाद भगवान।
पढ़ो सुनो सब ग्रंथ यह, सेवो अति हित-मान,
आत्म-समुन्नति बीज जो, करो जगत कल्याण॥

(लेखक की प्रशस्तिः) पूज्य श्री कानजीस्वामी ने वीर संवत् २४९२ में समाधिशतक पर प्रवचन किये थे। उन्हें सुनते समय जाने कोई उपशांत अध्यात्मरस का झरना बहता हो... ऐसी शांति होती थी...। अत्यंत सुगम शैली, बारबार अंतर्मुखी आत्मभावना का मंथन, घोलन, वैराग्यपूर्ण अति शांत मधुर भाव, इन सबसे भरपूर प्रवचन, उसी क्षण संसार के सर्व संक्लेशों को शमन करके अंतर में चैतन्यशांति के मधुर वातावरण में ले जाते थे। ऐसे अत्यंत वैराग्यरस संयुक्त आत्माभिमुखी प्रवचन सर्व जिज्ञासुओं को महान उपकारी होने से 'आत्मधर्म' में उनका सार प्रकाशित करना ११ वर्ष पूर्व प्रारंभ किया था, वह इस अंक में पूर्ण होता है। वीतरागी संतों का हृदय खोलकर और आत्मिक रस का सिंचन करके, इन प्रवचनों द्वारा समाधि के हेतुभूत—ऐसा परम आत्मज्ञान गुरुदेव ने समझाया है। बहिरात्मभाव छोड़ने की व अंतरात्मभाव ग्रहण करने की बारंबार प्रेरणा की है।

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

पहाड़ बोलते हैं

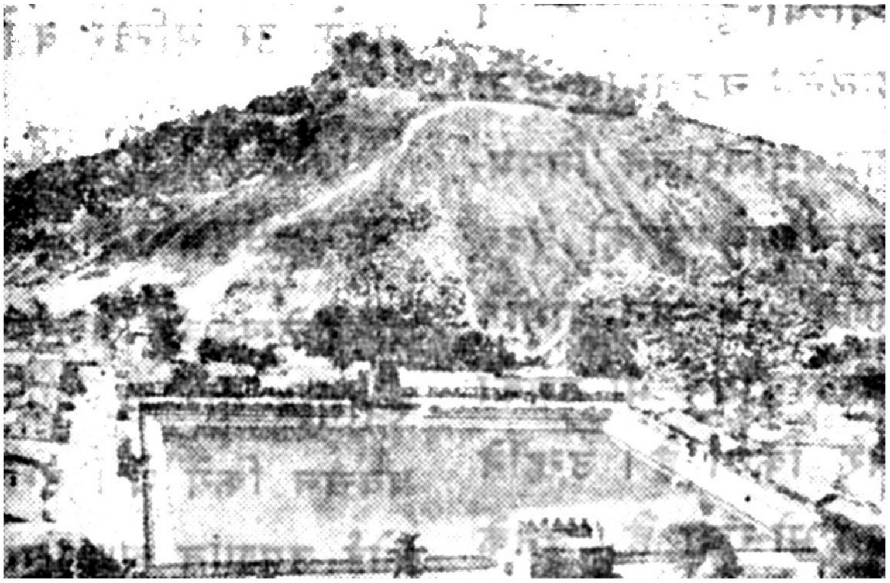

इन्द्रगिरि
पर्वत
श्रवण
बेलगोला

भारतवर्ष में कई ऐसे पर्वत हैं कि जो सैकड़ों हजारों वर्ष पूर्व इस भरतभूमि में विचरते वीतरागी संतों के पवित्र चरणों से पावन हुए हैं। उन वीतराग संतों के स्पर्शन से वे पहाड़ तीर्थ बन गये हैं... और वहाँ विचरते संतों की आत्मसाधना की साक्षी आज भी दे रहे हैं।

भारत का दक्षिण प्रदेश तो भद्रबाहुस्वामी, कार्तिकस्वामी, कुन्दकुन्दस्वामी और समंतभद्रस्वामी तथा नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती जैसे महान-महान मुनिवरों की विहारभूमि रहा है! दिगंबर संत उस भूमि में बहुत विचरे हैं। दक्षिण में एक ऐसा तीर्थ श्रवणबेलगोला है कि जो विश्वप्रसिद्ध बाहुबली भगवान की भव्योन्नत प्रतिमा के कारण अधिक प्रख्यात है। वहाँ इन्द्रगिरि और चंद्रगिरि ऐसे दो पहड़ आमने-सामने होने से ऐसा लगता है कि जैसे वीतरागता की बातें करते खड़े हों। ये दोनों पर्वत मानों बोलते पहाड़ हैं!! दोनों पर्वतों पर महान मुनिवरों की प्रशस्ति के कितने ही शिलालेख अंकित हैं। पर्वत की मुख्य भूमि का कितना ही भाग तो शिलालेखों से छाया हुआ है। अहो! ऐसे लगता है, जैसे कि पर्वत के हृदय में उन मुनिवरों के गुणगान अंकित हो गये हों और जैसे वे पहाड़ उन अक्षरों द्वारा आज भी अपने को वह गुणगाथा सुना रहे हों!! कितने ही ऐतिहासिक प्रसंग उन शिलालेखों में भरे हुए हैं। कुन्दकुन्द प्रभु इत्यादि संतों की अनेक गौरव गाथाएँ इन शिलालेखों द्वारा ये पर्वत अपने को सुना रहे हैं (समयसार में ऐसे दो शिलालेख छापे गये हैं।) श्री पूज्यपादस्वामी की महिमा संबंधी भी अनेक शिलालेख उन पर्वतों पर अंकित हैं। उनमें से कुछेक हम देखें—

शिलालेख नं. ४० जो सक संवत् १०८५ में (अर्थात् लगभग ८०० वर्ष पूर्व) खोदा गया है, उसमें निम्नलिखित उल्लेख है—

यो देवनन्दि प्रथमाभिधानो, बुध्यामहत्या स जिनेन्द्रबुद्धिः।
श्री पूज्यपादोजनि देवताभिः यत्पूजितं पादयुगं यदीयम्॥

प्रथम जिनका नाम 'देवनंदि' था, बुद्धि की महत्ता से वे 'जिनेन्द्रबुद्धि' कहलाये, और देवताओं द्वारा उनके पादयुगल पूजित हुए, अतः वे पूज्यपाद नाम से प्रसिद्ध हुए।

ऐसे ही आशय का दूसरा एक शिलालेख (नं. १०५) शक संवत् १३२० का है।

श्रवणबेलगोला का चंद्रगिरि पहाड़, १०८ नंबर के शिलालेख द्वारा बोलता है कि श्री पूज्यपाद ने धर्मराज्य का उद्धार किया, देवों के अधिपतियों ने उनके पादपूजन किये थे, जिससे वे 'पूज्यपाद' कहलाये। उनके द्वारा उद्धार प्राप्त शास्त्र आज भी, उनके विद्याविशारद गुणों का

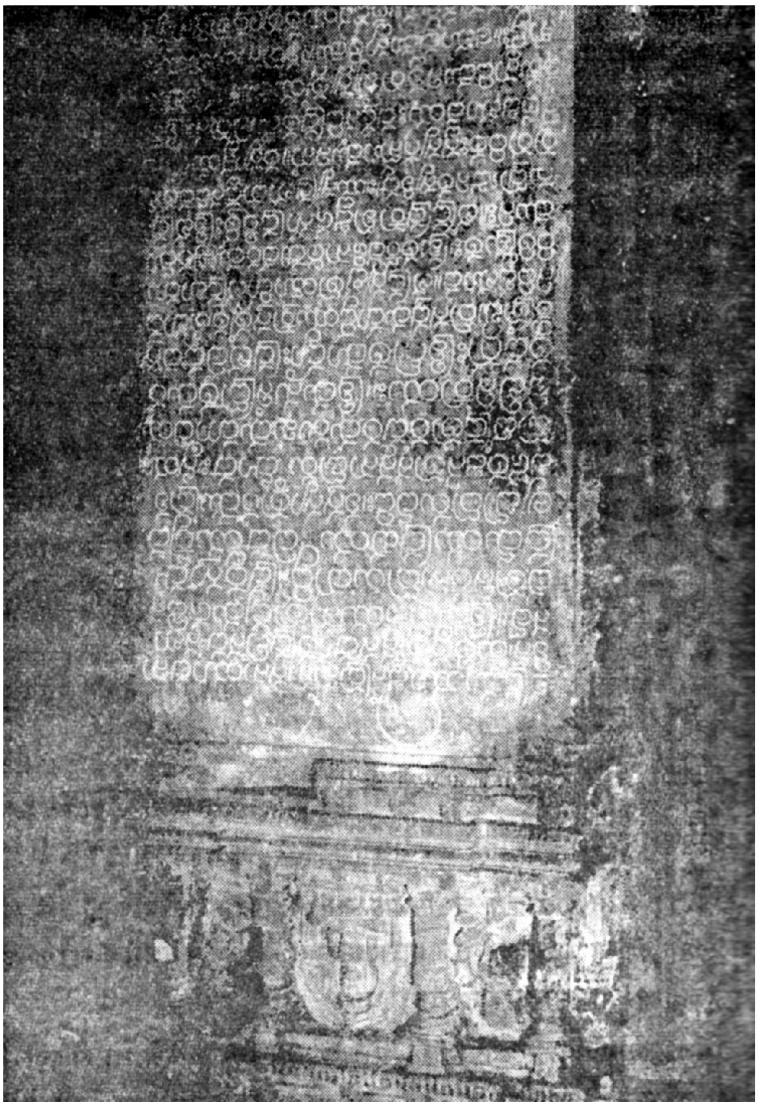

श्रवणबेलगोला
चन्द्रगिरि
पर का
एक शिलालेख

कीर्तिगान करते हैं। वे जिनवत् विश्व बुद्धि के धारक (समस्त विद्या में पारंगत) थे। उन्होंने काम को जीता था, अतः उत्तम योगियों ने उन्हें 'जिनेन्द्र बुद्धि' कहा है।

एवं उसी शिलालेख के दूसरे श्लोक द्वारा, पर्वत अपने को विदेह गमन की आनंदकारी बात भी सुनाता है—

श्री पूज्यपादमुनिरप्रतिमौषर्द्धिः जीयात् विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः।
यत्पाद्धौतमजलसंस्पर्शप्रभावात् कालायसं किल तदा कनकीयकार॥

श्री पूज्यपाद मुनि जयवंत वर्तो कि जो अप्रतिम औषधिऋद्धि के धारक थे। विदेहजिन के दर्शन द्वारा जिनका गात्र पावन हुआ था, और जिनके चरण-धोये जल के स्पर्श के प्रभाव से लोहा भी सोना बन गया था।

भिन्न-भिन्न आचार्यों की महिमा को प्रसिद्ध करनेवाले ऐसे तो सैकड़ों शिलालेख व हजारों श्लोक पहाड़ पर अंकित हैं। शिलालेखों के जो क्रम-नंबर दिये हुए हैं, उस पर से भी उसकी विपुल संख्या का ख्याल आता है। इन शिलालेखों का परिचय 'आत्मधर्म' के ग्राहकों को कभी बाद में करायेंगे। अभी तो कुन्दकुन्दप्रभु की महिमा संबंधी दो शिलालेख—जिसमें एक चंद्रगिरि पर और दूसरा विंध्यगिरि अर्थात् इन्द्रगिरि पर—(अर्थात् उस पर्वत पर जहाँ बाहुबलि भगवान की गगनचुंबी मूर्ति है,) शिलास्तंभ में अंकित है। उस उल्लेख के साथ यह लेख पूर्ण करेंगे—

इस शिलालेखरूपी जिह्वा द्वारा पर्वत अपने को कुन्दकुन्दाचार्य देव की, गौरव गाथा सुना रहा है। लेख कन्नड लिपि में है। भाषा संस्कृत है। गुरुदेव के सथ जब इस पर्वत की यात्रा को गये थे, तब कन्नड-विद्वान से इस शिलालेख के महत्वपूर्ण भाग को पढ़वाया था और उसमें कुन्दकुन्दाचार्य का उल्लेख है, यह जानकर सभी को बहुत आनंद हुआ था।

वंद्यो विभुर्भुवि न कैरहि कौण्डकुन्दः।
कुन्द-प्रभा-प्रणयि-कीर्ति विभूषिताशाः॥
यश्चारु चारणकराम्बुज चंचरीकः।
चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम्॥

चंद्रगिरि पर का यह शिलालेख कह रहा है कि कुन्दपुष्प की प्रभा धारण करनेवाली, जिनकी कीर्ति द्वारा दिशायें विभूषित हैं। जो चारणऋद्धिधारक महामुनियों के सुंदर हस्तकमल के भ्रमर समान थे, और जिन पवित्र आत्मा ने भरतक्षेत्र में श्रुत की प्रतिष्ठा की है, वे कुन्दकुन्दविभु इस पृथ्वी पर किससे वन्द्य नहीं है ? अर्थात् पृथ्वी पर बन्द्य है।

विंध्यागिरि पर के दूसरे अस्पष्ट लेख का आशय ऐसा है कि—यतीश्वर श्री कुन्दकुन्दस्वामी रजःस्थान (पृथ्वी को छोड़कर) चार अंगुल ऊँचे आकाश में गमन करते थे, उससे मैं ऐसा समझता हूँ कि वे अंदर में व बाह्य में रज से अपना अत्यंत अस्पर्शीपन (निर्लेपन) व्यक्त करते थे।

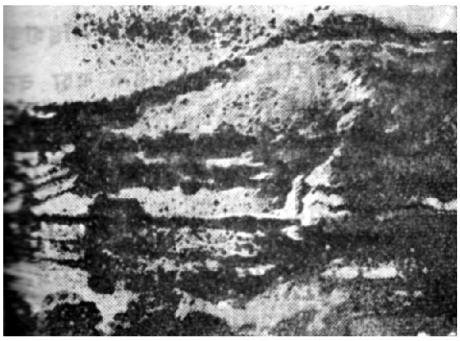

इन शिलालेखों की भाषा द्वारा, यह पर्वत आज भी वीतरागी मुनिवरों के गुणगान गा रहे हैं। इन्द्रगिरि-चंद्रगिरि जैसे पुनीत पर्वतों का यह प्रताप है कि उन पर खुदे इन शिलालेखों द्वारा, आज सैकड़ों-हजारों वर्ष पूर्व के ऐसे उत्तम ऐतिहासिक वृत्तांत हम जान सकते हैं। तदुपरांत पर्वत पर अति प्राचीन वैभव संपन्न अनेक जिनालय, बाहुबलि प्रभु जैसे विशाल जिनबिम्ब आदि के दर्शन, अशिक्षित प्राणी को भी जैनशासन की अपार महिमा लक्षगत कराते हैं।—नमस्कार हो, उन बोलते पर्वतों को...।

शुद्ध परिणमन का अवसर

[समयसार, कला २२१-२२ के प्रवचन में से]

हे जीव! संत तुझे अनुग्रह करके जब शुद्धआत्मस्वरूप बतला रहे हैं, तब तू ऐसा समझ कि शुद्धात्मा का अनुभव करके शुद्ध परिणमन करने का अवसर आया है। ऐसे अवसर में परद्रव्य ऊपर दोषारोपण करके अटक मत जाना; तेरे दोष को तेरी पर्याय का ही अपराध समझकर, शुद्धात्मा के प्रेम के बल से उस दोष को मूल में उखाड़ डालना। शुद्धात्मा के इस अवसर को चुकना मत!

आत्मा का सहज स्वभाव शुद्ध ज्ञान-आनंदरूप है, उसमें रागादिक अशुद्धता नहीं। पर्याय में जो मोह-राग-द्वेषरूप अशुद्धता है, वह शुद्ध स्वभाव से विरुद्ध है अर्थात् शत्रु है। इस मोह शत्रु की सेना को शुद्धस्वरूप के अनुभव द्वारा जीता जा सकता है। परंतु जो जीव परद्रव्य से

भिन्न अपने शुद्ध द्रव्य का अनुभव नहीं करते, वह परद्रव्य में मिला हुआ ही अपने को अनुभव करते हैं, वह जीव अशुद्ध अनुभव के द्वारा मोहशत्रु की सेना को जीत सकते नहीं, स्वरूप से भ्रष्ट ऐसे वह मिथ्यादृष्टि जीव मोह के वश वर्तते हुए राग-द्वेष को करते हैं, उस राग-द्वेष को करने में कहीं भी परद्रव्य का किंचित् भी दोष नहीं, जीव का अपना ही दोष है। फिर भी परनिमित्त का जो दोष देखता है। वह जीव उस राग-द्वेष को किसप्रकार मिटा सकता ? परद्रव्य से राग-द्वेष होने का जिससे माना है, तो जगत में परद्रव्य तो अनंत हैं तथा सदाकाल से हैं अर्थात् उसके अभिप्राय में सदाकाल अनंत राग-द्वेष होने का आया; परद्रव्य की विद्यमानता में शुद्ध परिणमन करने का अवसर ही उसको कहाँ रहा ?

उसको समझाते हैं कि भाई, परद्रव्य तो तुझे कभी किंचित् भी राग-द्वेष उत्पन्न नहीं करवाते। राग-द्वेष यह तेरी पर्याय का ही अपराध है; इसके उपरांत आगे यह विचार करना है कि यह राग-द्वेषरूप पर्याय अशुद्ध है तथा तेरा सहज स्वरूप शुद्ध है; उस शुद्ध स्वरूप का अनुभव करते हुए रागादि अशुद्ध परिणति छूट जाती है, तथा शुद्धस्वरूप जैसा है, वैसा प्रगट हो जाता है। अशुद्धता में या शुद्धता में परद्रव्य का तो किंचित् भी आश्रय नहीं, जीव स्वयं ही अशुद्ध या शुद्ध पर्यायरूप परिणमन करता है।

परद्रव्य ही मुझको राग-द्वेष करवाते हैं—ऐसी दुर्बुद्धि जो धारण करता है, उसके राग-द्वेष-अशुद्धता कब दूर हो ? कभी नहीं मिटती—क्योंकि पर से भिन्न ऐसी स्ववस्तु का बोध उसको नहीं है, उसकी बुद्धि अंधी हो गई है, इसलिये अपने दोष को वह देख नहीं सकता, इसीप्रकार दोषरहित शुद्धस्वरूप को भी नहीं देख सकता। इसलिये सम्यक्त्व रहित वह जीव अपराधी है, जिन आज्ञा को वह मानता नहीं। जिन आज्ञा तो ऐसी है कि जीव तथा पुद्गल दोनों का भिन्न-भिन्न स्वतंत्र परिणमन है। रागादि अशुद्धता, वह जीव का स्वयं का अपराध है। उसके बदले पर का दोष निकालना अपराध है, अन्याय है, अनीति है; वह अपराधी जीव संसार में भ्रमण करता है।

भाई, तेरे दोष ही तुझे बंधनरूप है; तथा तेरी शुद्धता ही तुझे मुक्ति है, बंधन तथा मुक्ति दोनों अवस्था में तेरा ही कर्तृत्व है, तेरी अवस्था में अन्य का कर्तृत्व किंचित् भी नहीं—ऐसी स्पष्ट वस्तुस्थिति जैनशासन में प्रसिद्ध है। इसको जो नहीं जानता, वह मिथ्यादृष्टि है, उसको शुद्धता का अवसर आनेवाला नहीं है।

जीव को शुद्ध परिणमन का अवसर कब ? कि अपने शुद्धस्वरूप को अनुभवे तब। जीव जब पर से भिन्न अपने सहज स्वरूप का अनुभव करता है, तब उसको शुद्धतारूप परिणमन होता है ! जहाँ तक पर के साथ एकताबुद्धि करता रहेगा, वहाँ तक शुद्ध परिणमन का अवसर नहीं आयेगा। पर के साथ एकताबुद्धि रखनेवाला अशुद्धरूप ही परिणमन करेगा। जगत में अनेक जीव समुदाय तो अज्ञान से अशुद्धतारूप ही परिणमन कर रहा है; कोई विरले जीव ही भेदज्ञान करके शुद्धतारूप परिणमन करते हैं।

जीव का स्वभाव तो शुद्ध है, तो वह अशुद्धतारूप किसप्रकार परिणमन करेगा ? इसलिये परद्रव्य ही उसको अशुद्धता करवाता है ! इसप्रकार अज्ञानी तर्क करता है ?

उसको कहते हैं कि—भाई ! जीव की अवस्था में अशुद्धतारूप परिणमन की भी शक्ति है। द्रव्यस्वभाव में भले ही अशुद्धता नहीं किंतु पर्याय में तो शुद्धता या अशुद्धतारूप परिणमन होने की शक्ति है—योग्यता है, वह कहीं पर के कारण नहीं, स्वयं पर्याय की ही वैसी शक्ति है। परद्रव्य उसमें किंचित् भी करता नहीं। जीव स्वयं अपनी पर्याय की शक्ति से अशुद्ध होता है, तथा स्वयं ही अपनी पर्याय की शक्ति से शुद्ध होता है। जो परद्रव्य का अस्तित्व ही उसको अशुद्धता का कारण हो, तब तो अशुद्धता होती ही रहेगी; अशुद्धता से छूटकर शुद्धतारूप स्वयं परिणमन ही नहीं कर सकेगा !—किंतु ऐसा नहीं है। अनंत जीव शुद्धस्वरूप के अनुभव द्वारा अशुद्धता दूर करके सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं।

ज्ञान तो ज्ञान ही है, ज्ञान तो राग-द्वेष को किंचित् भी उत्पन्न नहीं करता। ज्ञान का जानने का स्वभाव है, अर्थात् जानना, यह कहीं राग-द्वेष का कारण नहीं। ज्ञान ही जो राग-द्वेष का कारण हो तो केवलज्ञान होने पर अनंत राग-द्वेष बढ़ जावे, राग-द्वेष कभी मिटे ही नहीं। किंतु ज्ञान की वृद्धि होने पर तो राग-द्वेष मिटते हैं। ज्ञान में राग-द्वेष का अभाव ही है। राग-द्वेष छोड़ने के लिये कहीं ज्ञान को छोड़ना नहीं पड़ता। राग-द्वेष छूट जाते हैं तथा ज्ञान अकेला शुद्धस्वरूप से रह जाता है। ऐसा ज्ञान का स्वरूप जिसको अनुभव में नहीं आता, वह जीव मिथ्यादृष्टि के कारण राग-द्वेष करता है।

ज्ञान तो दीपक जैसा है; जिसप्रकार दीपक के प्रकाश में दिखाई देनेवाले पदार्थ कहीं दीपक के प्रकाश को मलिन करते नहीं, दीपक तो प्रकाशस्वरूप ही है; इसीप्रकार चैतन्यदीपक के प्रकाश में परद्रव्य या शुभाशुभभाव दिखाई दे, वह कहीं चैतन्यदीपक के प्रकाश को मलिन

नहीं करते, चैतन्यदीपक तो प्रकाशस्वरूप ही है। ज्ञान तो सहज उदासीन-स्वरूप है; राग को जानते हुए भी वह रागी नहीं होता, जड़ को जानते हुए भी जड़ नहीं बनता; वह तो अपने स्वरूप में अचल रहता है—ज्ञानचेतनारूप ही रहता है। धर्मी को ऐसी ज्ञानचेतना की अनुभूति है, इसके द्वारा वह मोक्ष की साधना करता है।

अज्ञानी राग को जानता हुआ, मानता है कि 'मैं स्वयं ही रागरूप हो गया, पर को जानता हुआ पररूप ही हो गया'—इसप्रकार अज्ञान चेतन का अनुभव करता है। आश्चर्य है कि सभी को जाननेवाला स्वयं अपने को ही नहीं जानता। मैं नहीं तथा यह है, ज्ञान नहीं तथा ज्ञेय है—ऐसा अपने भिन्न अस्तित्व का भान नहीं होना, यह बड़ी भूल है तथा यही संसार की-अशुद्धता का मूल कारण है। आत्मा तो जाननेवाला प्रकाशस्वरूप है, इसके अस्तित्व में ही ज्ञेयों का ज्ञान होता है। जाननेवाले के अस्तित्व के बिना पदार्थों को जानेगा कौन? ऐसा वस्तुत्व का स्वरूप जानकर ज्ञान में मग्न होने से शुद्धपरिणमन होता है; आत्मा स्वाश्रित ज्ञानरूप परिणमन करे—इसका नाम ज्ञानचेतना है, यह आत्म विकास से भरी हुई है। धर्मात्मा ऐसी शुद्धचेतना के स्वाद द्वारा अनुभव द्वारा मोक्ष की साधना करता है।

जगत के कोई पदार्थ ऊँचे-नीचे-आगे-पीछे हो तो सूर्य को क्या? इसीप्रकार जगत के ज्ञेय पदार्थ अपने-अपने भाव में परिणमन करे, उसमें ज्ञान सूर्य को क्या! बिच्छू या सर्प इस शरीर से दूर हो या नजदीक हो, इसमें ज्ञान को क्या? ज्ञान तो निर्भयता से अपने ज्ञानस्वरूप में ही रहने का स्वभाववाला है। अहा! ऐसा सहज वीतरागी ज्ञान, यह आत्मा का स्वरूप है; ऐसे ज्ञान का अनुभव, वह वीर का सुंदर मार्ग है। वीतराग के ऐसे सुंदर मार्ग को वीतरागी संतों ने प्रसिद्ध किया है।

'शुद्ध-ज्ञान-मात्र जीवद्रव्य' के अनुभव में सभी शास्त्रों का सार समा जाता है। कुन्दकुन्दसवामी कहते हैं कि सर्वज्ञदेव से लगाकर हमारे गुरुपर्यंत—कि जो शुद्धात्मा में लीन रहते थे, उन गुरुओं ने अनुग्रह करके हमको शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया, इसी शुद्धात्मा को मैं स्वानुभवरूप निज वैभव सहित दिखलाता हूँ। अहा, 'ऐसा शुद्धात्मा मैं हूँ' ऐसा जानकर, अनुभव करके प्रसन्न हो, आनंदित हो। शुद्धात्मा के अनुभव का यह अवसर आया है—ऐसा समझकर प्रसन्न हो।

शुद्धस्वरूप को चूककर, जीव ने स्वय अपनी पर्याय में अशुद्धता उत्पन्न की है। अरे

जीव! जो परद्रव्य ही बलात्कारपूर्वक अशुद्धता करवाता हो तो उस अशुद्धता के छूटने का अवसर कब ?—क्योंकि परद्रव्य तो जगत में सदा काल से है, जो यह करवाते हों तो सर्व काल विकार करवाते ही रहेंगे, तथा जीव को विकार से छूटने का किसी प्रकार से अवसर ही न रहेगा। इसलिये तेरी शुद्ध या अशुद्ध परिणमन तेरे से ही है, ऐसा तू समझ, तो शुद्ध द्रव्य के आश्रय से शुद्धता प्रगट करके अशुद्धता को दूर करने का अवसर आवेगा।

तू ही तेरी स्वतंत्रता समझ कि मैं बाहर पर की ओर झुका, इसलिये मुझे अशुद्धता हुई; तथा मैं अंतर में स्व की ओर झुकूँ तो मुझे शुद्धता होगी। मेरी अशुद्धता में तथा शुद्धता में परद्रव्य का किंचित् भी हस्तक्षेप नहीं, ऐसी स्वतंत्रता की पहिचान होने से स्व-सन्मुख होकर शुद्धता का अवसर प्राप्त होगा।

किंतु जो जीव अपनी स्व-वस्तु को नहीं जानते, अपने परिणमन को जानते नहीं, जिसका ज्ञान उल्टा है, जिसके सम्यक्त्व चक्षु बंध हो गये हैं—ऐसा जीव मोहशत्रु की सेना को जीत नहीं सकता, अर्थात् शुद्धतारूप परिणमन कर सकता नहीं। इसका अपराध क्या ? कि कर्म आदि परद्रव्य मुझे विकार करवाते हैं, ऐसा वह मानता है, यह उसका महान अपराध है।

पर के कारण विकार होता है, ऐसी मान्यतावाले जीव को अपराधी कहा; उस अपराध का फल क्या ?—कि अनंत संसाररूपी कारागृह, इसलिये कहा है कि परद्रव्य जीव को विकार करवाते हैं, ऐसी मान्यतावाली जीवराशि अनंत संसारी है, संसार समुद्र को वह पार कर सकती नहीं, अशुद्धता से छूट सकती नहीं। स्वाधीन परिणमन को वह मानता ही नहीं, फिर उसकी अशुद्धता कहाँ से दूर हो।

मिथ्याभाव से राग-द्वेष का कर्तारूप जीव स्वयं परिणमन करता है; तथा सम्यक्त्वभाव होने से मोक्षमार्गरूप भी स्वयं ही परिणमन करता है। छह द्रव्य अपने-अपने भाव में स्वतंत्ररूप से ही वर्त रहे हैं, कोई द्रव्य एक-दूसरे के परिणमन में हस्तक्षेप नहीं करता। भाई! अशुद्धतारूप तेरी भूल तुझने की है; परद्रव्य में ऐसी कोई शक्ति नहीं कि तेरे में दोष उत्पन्न करें; तथा तेरा भी ऐसा स्वरूप नहीं कि पर से तेरे में दोष उत्पन्न हो जावे। अरे! तेरे अज्ञान से इस अनंत संसार के दुःख में आकुल-व्याकुल हो रहा है, तो हम तुझे इससे छूटने का उपाय बतलाते हैं—उसको लक्ष में ले। मेरी अवस्था में अशुद्धता मैंने मेरी भूल से ही की है; यह भूल क्षणिक है, तथा मेरा शुद्धस्वभाव त्रिकाल है, इसप्रकार शुद्धस्वभाव को लक्ष में लेने से पर्याय की क्षणिक भूल दूर हो जाती है तथा स्वभाव के आश्रय से शुद्धता प्रगट होती है।

जो स्वयं की भूल हो ही नहीं तो दूर करने का क्या रहा ? तेरी भूल है, इसलिये तो भूल दूर करने का तुझे उपदेश दिया है। तेरा दोष तुझे बंधनकारक है, यह संत की प्रथम शिक्षा है। दोष (भूल) इतना कि पर को अपना मानना तथा अपने को स्वयं भूल जाना।

- भूल स्वयं की है ही नहीं तो दूर करने का रहा नहीं।
- भूल स्वयं का स्वरूप ही हो तो दूर करने का रहा नहीं।
- अनित्यपर्याय में भूल स्वयं की है किंतु स्थायीरूप से नहीं।
- इसलिये स्थायी शुद्धस्वरूप के लक्ष से पर्याय की भूल दूर हो जायेगी।

अज्ञानी स्वयं के शुद्धस्वभाव का तो अजान है, तथा पर्याय में जो निज के अपराध से अशुद्धता है, उसका भी अजान है। नहीं जानता द्रव्य को, नहीं जानता पर्याय को; कर्म आदि के संयोग ही मुझे अशुद्धता करवाते हैं तथा देव-गुरु आदि का संयोग ही मुझे शुद्धता करवाते हैं—ऐसा मानता है, अर्थात् स्वयं तो मानो धोया हुआ मूला के समान-श्वेत-स्वच्छ ही रहा, कुछ भी शुद्धता का उद्यम करने का नहीं रहा !—वाह तेरी विपरीतता !

परद्रव्य तो तेरे से भिन्न उसके भाव में परिणमन कर रहा है, वह इस जीव को किंचित् भी विकार नहीं करवाता; फिर भी अज्ञानी उसके ऊपर झूठा दोषारोपण करता है कि मेरे में अशुद्धता तेने करवाई।—किंतु भाई! मैं (परद्रव्य) तो तेरे में आया नहीं, तो मैंने तेरे में किसप्रकार अशुद्धता की ? शास्त्राध्ययन में से जो स्वाश्रय का तथ्य निकालना चाहिये, वह अज्ञानी को आता नहीं, वह अपनी विपरीत दृष्टि के कारण शास्त्र के अभिप्राय को भी उल्टा ही समझता है, तथा पराश्रय भाव की पुष्टि करता है। पर से जो हानि माने, वह पर से लाभ भी माने; तथा जो पर से लाभ मानेगा, वह स्वसन्मुख होगा नहीं अर्थात् उसको सम्यग्दर्शनादिक का लाभ कभी प्राप्त होगा नहीं। अपनी एक समय की पर्याय में शुद्धता अथवा अशुद्धता करने की स्वतंत्र शक्ति है, उसको भी जो नहीं जानता, वह त्रिकाली स्वभाव की शुद्धता का अपार सामर्थ्य कहाँ से जानेगा ?

भाई, 'मेरे दोष मैंने किये हैं' ऐसा समझ तो तुझे तेरे दोष दूर करने की जागृति रहेगी। 'मैं तो अनंत दोष का भाजन हूँ करुणासागर'—ऐसा समझ करके मुमुक्षु जीव यथार्थ उपाय के द्वारा दोष दूर करने का प्रयत्न करता है। किंतु दोष परद्रव्य ने करवाया है—ऐसा मानेगा तो तुझे वह दूर करने की परवाह कहाँ से रहेगी ? जो परद्रव्य तुझे दोष करवाते हैं—तो तेरे में अपना

कुछ पुरुषार्थ है कि नहीं ? परद्रव्य के आधीन हुए बिना स्वाधीनता से शुद्धतारूप परिणमन करने की कुछ शक्ति तेरे में है कि नहीं ? विकार से बचने का तथा सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव प्रगट करने का स्वसन्मुखता का पुरुषार्थ तू कर, तभी तेरे में शुद्धता होगी तथा दोष दूर होंगे। विपरीतता या सुलटापन, अशुद्धता या शुद्धता, यह दोनों मेरे ही पुरुषार्थ के कार्य हैं—ऐसा जो समझे, वह पुरुषार्थ द्वारा अशुद्धता दूर करके शुद्धता करेंगे किंतु स्वयं के पुरुषार्थ को ही जो स्वीकार नहीं करते, उनके अशुद्धता दूर होकर अशुद्धता का अवसर ही कहाँ से आवेगा ?

● अशुद्धता किसप्रकार हुई ?—स्वयं ने शुद्धात्मा का अनुभव नहीं किया, इसलिये अशुद्धता हुई।

● शुद्धता किसप्रकार हो ?—स्वयं शुद्धात्मा का अनुभव करे तो शुद्धता होती है।

● जो शुद्ध जाने आत्म को शुद्ध आत्म की प्राप्ति करे;
अशुद्ध जाने आत्म को अशुद्ध आत्मा की प्राप्ति करे।

अनुकूल या प्रतिकूल संयोगों के ढ़ेर आत्मा को चलायमान नहीं कर सकते; अनुकूलता के ढ़ेर आत्मा की शुद्धता में किंचित् मदद करे या राग करावे, ऐसा नहीं; इसीप्रकार प्रतिकूलता के ढ़ेर आत्मा को शुद्धता से विचलित कर दे या अशुद्धता अथवा द्वेष करावे, ऐसा नहीं। अनुकूल-प्रतिकूल संयोग के बीच भी आत्मा निजस्वरूप में लीन होकर केवलज्ञान-परमात्मा हो सकता है... ऐसा वह स्वतंत्र परमेश्वर है।

श्रोता कहता है कि—'अब तक हमको ऐसा समझानेवाला कोई नहीं मिला।'

हे जीव! जो तेरी समझने की तैयारी हो तो जगत में सर्वज्ञ तथा संत तैयार ही है। तैयारीवाला पात्र जीव को ज्ञानी-धर्मात्मा का योग मिल ही जाता है (-भोगभूमि में ऋषभदेव के जीव को मुनिराज का प्रसंग मिल ही गया) ज्ञानी की उपासना नहीं की, इसलिये भ्रमण करना पड़ा, इसका अर्थ ऐसा है कि ज्ञानी ने जैसा आत्मस्वरूप समझाया, वैसा स्वयं ने अनुभव में नहीं लिया; इसलिये भ्रमण किया, अर्थात् कि स्वयं ने पात्रता तैयार नहीं की, इसलिये भ्रमण किया। स्वयं की पात्रता बिना ज्ञानी की भी सच्ची पहिचान नहीं हो सकती। ज्ञानी का योग तो अनेक जीवों को मिला, परंतु जीव की स्वयं की पात्रता बिना ज्ञानी को भी उसमें कारण कैसे माना जाये ? इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई! तेरे भाव में तू तेरी स्वतंत्रता पहिचान, तथा स्वोन्मुख होने का सम्यक् प्रयत्न प्रारंभ कर तो तेरी अशुद्धता दूर होकर शुद्धता प्रगट हो। ऐसी शुद्धपरिणति का यह अवसर है।●

मोक्षमार्ग अर्थात् अतीन्द्रिय सुख का अनुभव

[धर्मात्मा की मोक्ष-साधना का उत्तम वर्णन]

[समयसार-कलश : १९०-१९१]

निर्विकल्प ज्ञान-आनंदस्वरूप आत्मा इसके अनुभवरूप शुद्ध परिणति, यही मोक्षमार्ग है। सम्यग्दृष्टि जीव अशुभ तथा शुभ दोनों का उल्लंघन करके अतीन्द्रिय सुख के अनुभव सहित मोक्षमार्ग की साधना करते हैं। मोक्षमार्ग में शुद्ध स्वभाव के अनुभव का ही पुरुषार्थ है। राग में रुके, इतना प्रमाद है, यह तो भार है—बोझ है। सर्व राग के भार से हलका (-सहज लघु) होकर अतीन्द्रिय-सुखरूप अमृत के प्रवाह में मग्न होता है, वही जीव मोक्ष का उद्यमी है। अरे, अशुभ का तो त्याग किया, किंतु शुभराग में रुक जाये तो मोक्ष की साधना कैसे हो ?

जो चैतन्य के अनुभव के कार्य को छोड़कर सारे दिन अन्य कार्यों का विकल्प करता रहता है, वह आलसी है, प्रमादी है, अनुभव के लिये उद्यमी नहीं किंतु शिथिल है। धर्मात्मा तो बाह्य कार्यों से विमुख होकर शुद्ध चैतन्य के अतीन्द्रिय-सुख के अनुभव में मग्न हो गये हैं; तथा ऐसे स्वभाव के उद्यम के द्वारा मोक्ष की साधना करते हैं। मोक्ष की साधना तो अतीन्द्रिय-सुख के अनुभववाली है, विकल्प के द्वारा यह साधना नहीं हो सकती। खूब शुभ विकल्प करते रहने से मोक्षमार्ग हो जायेगा—ऐसा होता नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि शुभराग में पड़ा रहेगा तो तू प्रमादी है... यह प्रमाद छोड़कर मोक्षमार्ग का उद्यम बन, अर्थात् कि शुद्ध चैतन्य के सुख के अनुभव में मग्न हो जा! शुद्धोपयोग-परिणति द्वारा ही मुक्ति होती है।

वीतराग-स्वरूप आत्मा अपने वीतरागभावरूप कार्य को नहीं करे तो वह प्रमादी है; शुभराग, यह भी प्रमाद का प्रकार है, यह अशुद्धता है, आलस है। शुद्धोपयोग यही आत्मा की जागृति है, इसी में आनंद है। राग तो पराश्रित भाव है। इसमें तो आकुलता है। मोक्षमार्ग तो आत्म आश्रित शुद्ध परिणाम है। शुभराग तो मोह परिणाम है तथा मोक्षमार्गरूप धर्म, यह तो निर्मोह परिणाम है। मोह-राग-द्वेष रहित शुद्ध परिणाम को ही भगवान ने जिनशासन कहा है; इसी को जैनधर्म कहा है; राग को जिनशासन में धर्म नहीं कहा, इसको तो मोह कहा है।

अरे, ऐसे शुद्ध-परिणामरूप धर्म को जाने भी नहीं तथा आलसी होकर राग में ही पड़ा रहे, उसके मोक्षमार्ग की साधना कहाँ से हो ? राग तो अशुद्धता है, इसमें से शुद्धता कहाँ से

आवेगी ? राग का अनुभव करनेवाला जीव अशुद्ध है, चैतन्य का अनुभव करनेवाला जीव शुद्ध है। ऐसे शुद्धमार्ग का ऐसा दृढ़ निर्णय करना चाहिये कि किसी से चलायमान नहीं हो। नि:शंक निर्णय के बल द्वारा मोक्षमार्ग की साधना होती है। इसीप्रकार के मार्ग के द्वारा धर्मी जीव मोक्ष की साधना करते हैं। शुद्धोपयोग द्वारा जहाँ स्वरूप में मग्न होता है कि तत्काल वह मोक्ष सुख का अनुभव करता है।

रागरूपी प्रसाद में तो कषाय के भार से भारीपना है-बोझा है, तथा शुद्ध स्वरूप का अनुभव तो चैतन्यरस के भरा हुआ है, आनंद-रस से निर्भर है। भार तो दोनों में है—एक में कषाय का भार है, तो दूसरे में पवित्र शांति का भार है। रागी प्राणी को राग की बातों में रस आता है, धर्मात्मा को आत्मा की चर्चा में रस आता है। अरे, जिस चैतन्य के अनुभव की चर्चा में ऐसा आनंद, तो उस चैतन्य के साक्षात् अनुभव की तो बात ही क्या! ऐसे आनंद का अनुभव करते-करते धर्मात्मा मोक्ष में चले जाते हैं।

मोक्षमार्ग अर्थात् निरपराध निर्दोष भाव, इसमें राग-द्वेष-मोह का अभाव है। जितने भी राग-द्वेष-मोहभाव स्थूल हों, सूक्ष्म हों, शुभ अथवा अशुभ हों, यह सभी अपराध है, इनसे रहित मोक्षमार्ग है। जो अपराध हो, वह मोक्ष का कारण कैसे बने ?—वह तो बंध का ही कारण है। शुभराग सम्यग्दृष्टि का हो तो भी वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं। मोक्ष पूर्ण अतीन्द्रिय सुखरूप है तथा इसका उपाय भी अतीन्द्रिय सुखमय ही है। शुद्ध परिणति के द्वारा जो शुद्ध चिद्रूप का अनुभव, वही मोक्षमार्ग है। राग के आश्रय से उसका अनुभव नहीं होता, शुद्धता के आश्रय से ही ऐसा अनुभव होता है। ऐसे अनुभव में अतीन्द्रिय सुख का प्रवाह प्रवाहित होता है, इसमें धर्मी मग्न है।

अनुभवदशा के द्वारा धर्मी को शुद्ध चेतना तथा सुख का प्रवाह प्रवाहित होता है; इसके द्वारा सकल कर्मों का क्षय करके वह अतीन्द्रिय सुखरूप मोक्ष को प्राप्त करता है। मोक्ष का कारण मोक्ष की जाति का ही होता है, इससे विरुद्ध नहीं होता; कारण और कार्य एक जाति का होता है, विरुद्ध नहीं होता। पूर्ण सुखरूप मोक्ष का कारण सम्यग्दर्शन, यह भी सुख के प्रवाह से भरा हुआ है। चौथे गुणस्थान का सम्यग्दर्शन भी अतीन्द्रिय सुख सहित है, सुख के अनुभव रहित सम्यग्दर्शन हो ही नहीं सकता।

अपने भगवान को हमने पहिचाना है

स्तुति के एक संस्कृत श्लोक में कोई अन्यमती स्तुतिकार कहता है कि 'हे महान ईश्वर! तुम्हारा स्वरूप कैसा है, यह तो मैं जानता नहीं; किंतु आप जैसे हो, उसीप्रकार मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

— परंतु, भगवान कैसे हैं, उन्हें पहिचाने बिना उनको सच्चा नमस्कार कहाँ से हो सकेगा?

फिर वह कहता है कि हमारे महान देव श्रेष्ठ हैं, इनसे श्रेष्ठ कोई देव नहीं;

— परंतु स्वयं ही अपने देव के स्वरूप को जानता नहीं, फिर उनमें श्रेष्ठता कहाँ से ज्ञात हुई? जिस वस्तु को स्वयं जानता नहीं, उसकी अन्य के साथ तुलना किसप्रकार की जा सके? इसलिये देव का स्वरूप पहिचाने बिना स्तुति, यह सच्ची स्तुति नहीं। मैं किसकी स्तुति करता हूँ—ऐसा जाने बिना स्तुति कहाँ से हो?

भगवान को साक्षात् देखनेवाले श्री कुन्दकुन्दस्वामी तो कहते हैं कि जो जीव अरिहंत देव का स्वरूप जानता है, वह अपनी आत्मा के गुणों को पहिचानता है, अर्थात् उसको सम्यग्दर्शन होता है, तथा उस ही के भगवान की सच्ची स्तुति है।

भगवान का यह भक्त नि:शंक कहता है कि प्रभु! दुनिया में श्रेष्ठ ऐसा आपका स्वरूप हमने पहिचान लिया है, तथा आपके जैसे ही अपने आत्मा का भी हमने साक्षात्कार कर लिया है; इसके बल से मोह का नाश करके हम आपके मार्ग पर चले जा रहे हैं।

—यह है प्रभुता का मार्ग!

—००—००—००—

आद्य-स्तुतिकार समंतभद्रस्वामी कहते हैं कि हे जिन! हम आपको मात्र बाह्य विभूति के द्वारा ही महान नहीं मानते, परंतु अंतर में आपकी सर्वज्ञता वीतरागता इत्यादि को पहिचान कर, तथा आप ही का उपदेश हितकारी है, ऐसा निर्णय करके, इसके द्वारा हम आपको महान समझकर पूजते हैं। कोई जीव बिना पहिचाने सच्चे देव की स्तुति करे तो भी उसको अपने में श्रद्धा-ज्ञान का लाभ नहीं होता, तब फिर झूठे देवों की स्तुति करे, उसकी तो बात ही कहाँ रही? सम्यग्दृष्टि जीव तो परम नि:शंकता पूर्वक कहते हैं कि अपने इष्ट सर्वज्ञ वीतराग परम देव को हमने आत्मसाक्षात् पूर्वक पहिचाना है; हमने अपने देव को प्रत्यक्ष जान लिया है।

हे पंचपरमेष्ठी भगवंतों! पधारो मेरे मुक्तिमंडप में....

श्रावण कृष्णा बीज के मंगल दिन प्रवचनसार की नवीन आवृत्ति का प्रकाशन हुआ... इस प्रसंग के समय पूज्य स्वामीजी ने प्रवचनसार की पाँच मंगल गाथाओं के ऊपर उल्लासकारी प्रवचन किया था.... अहा! मानो पंचपरमेष्ठी भगवंतों का साक्षात्कार करवा रहे थे। पंचपरमेष्ठी से भिन्नत्व रखकर नहीं किंतु पंचपरमेष्ठी के साथ सम्मिलित होकर नमस्कार किसप्रकार किया जाये—यह समझा रहे थे... उस समय की झंकार आत्मप्रदेशों में अभी भी गूँजती है।

यह प्रवचनसार तो भगवान की वाणी का सार है।

प्रारंभ में परम आनंद को स्मृति में लेकर कहते हैं कि परमानंदरूपी सुधारस के पिपासु भव्य जीवों के हित के लिये यह प्रवचनसार की टीका रची गयी है। आत्मा के निर्विकल्प अतीन्द्रिय आनंद की जिसको प्यास लगी हो, ऐसे पिपासु जीवों को तृप्त करने के लिये इस शास्त्र की रचना की गयी है।

शास्त्रकार कुन्दकुन्दाचार्यदेव कैसे हैं? इनकी पहिचान करके अमृतचन्द्राचार्य देव कहते हैं कि उन आसन्न भव्य महात्मा को संसार-समुद्र का किनारा निकट है; उनकी वाणी के वाच्य द्वारा हजार वर्ष में भी निःशंक निर्णय हो गया कि अहो, संसार-समुद्र का किनारा उनको नजदीक आ गया है; सातिशय विवेकज्योति उनको प्रगट हो गयी है। देखो, अनुभवी को दूसरे अनुभवी की दशा की पहिचान हो जाती है। सातिशय ऐसा भेदज्ञान हुआ है कि जो वृद्धिगत होकर अप्रतिहतरूप से केवलज्ञान ही लेगा। जिसप्रकार सातिशय अप्रमत्त अर्थात् सातवाँ गुणस्थान उसको कहते हैं कि ऊँचा ही चढ़े अर्थात् श्रेणी मांडे। इसीप्रकार कुन्दकुन्दस्वामी को ऐसी सातिशय ज्ञान-ज्योति प्रगट हुई है कि अप्रतिहतरूप से केवलज्ञान प्राप्त करेगी। उनको अनेकांत विद्या के बल द्वारा समस्त एकांतवाद की विद्या का आग्रह नष्ट हो गया है; तथा समस्त पक्ष का परिग्रह छूट गया है अर्थात् अत्यंत मध्यस्थता हो गयी है। मध्यस्थता से वस्तुस्वरूप जैसा है, वैसा कहा है। जिन्होंने सर्व पुरुषार्थ में श्रेष्ठ तथा आत्मा के उत्तम हितरूप ऐसी मोक्षलक्ष्मी को उपादेय किया है। कैसी है मोक्षलक्ष्मी?—कि भगवान पंच परमेष्ठी के प्रसाद से जिसकी प्राप्ति होती है; जो परमार्थ सत्य है तथा अक्षय है। ऐसी मोक्षलक्ष्मी का उपादेयरूप से

निर्णय करके स्वयं सर्व आरंभ से मोक्षमार्ग का आश्रय करते हैं; मंगलरूप वर्तमान तीर्थ के नायक श्री महावीर भगवान को तथा पंचपरमेष्ठी भगवंतों को प्रणाम तथा वंदनरूप नमस्कार करके स्वयं सर्व आरंभ से मोक्षमार्ग का आश्रय करते हैं तथा शुद्धोपयोगरूप साम्यभाव की प्राप्ति की प्रतिज्ञा करते हैं।—प्रारंभ की पाँच अलौकिक मंगल गाथाओं में अमृतचंद्राचार्यदेव ने इतना तो महान उपोद्घात लिखकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव को पहिचान करवायी, तथा बहुमान किया। फिर पाँच गाथाओं द्वारा पंचपरमेष्ठी भगवंतों को भावभीना नमस्कार करते हुए श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि मैं शुद्धोपयोगरूप साक्षात् मोक्षमार्ग को अंगीकार करता हूँ।

'मैं' तीर्थनायक वर्द्धमान देव को नमस्कार करता हूँ; 'मैं' कैसा हूँ? कि स्व-संवेदनप्रत्यक्ष दर्शन-ज्ञान सामान्यस्वरूप मैं हूँ। ऐसा हूँ; आराध्य-आराधक दोनों भावों को मेरे में ही सम्मिलित करके पंच पमरेष्ठी को अभेद नमस्कार करता हूँ। पंचपरमेष्ठी भगवंत जैसे वीतराग हैं, उनको नमस्कार करते हुए मैं भी वैसा वीतराग हो जाता हूँ, अर्थात् मैं वंदन करनेवाला तथा पंचपरमेष्ठी मेरे वंदन करने लायक, ऐसा विकल्प छूट जाता है... तथा शुद्धोपयोग हो जाता है।

'यह... मैं' ऐसा स्वयं अपने को साक्षात् दृष्टि में लेकर स्व-संवेदन द्वारा प्रत्यक्ष करके पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ। मैं स्वयं वर्तमान शुद्धोपयोगरूप होकर अभेद नमस्कार करता हूँ—ऐसा पंचम काल के मुनि निःशंक कहते हैं। वंदन करनेवाले कैसे होते हैं, यह भी इसमें आया। पंचपरमेष्ठी को वंदन करते हुए विकल्प को तोड़कर मैं अपने में ही नमता हूँ। स्वयं अपने में नमन करते हुए पंचपरमेष्ठी को नमस्कार स्वयमेव हो जाता है; भाव्य-भावक का भेद वहाँ रहता नहीं। देखो, यह अपूर्व मांगलिक! ऐसा भाव अपने में जिसने प्रगट किया, उसके ऊपर पंचपरमेष्ठी भगवंतों की प्रसन्नता प्रगट हुई।

अहो! मुक्ति के स्वयंवर मंडप में परम निर्ग्रंथता की दीक्षा के आनंदमय प्रसंग के समय कुन्दकुन्दाचार्य पंचपरमेष्ठी भगवंतों को आमंत्रित करते हैं-इनका ऐसा भावपूर्ण विवेचन सुनते हुए श्रोताजन बारंबार हर्षविभोर हो जाते थे... मानों सिद्ध भगवन्त पधारे हों... मानों सीमंधरादि तीर्थंकर भगवंत पधारे हों, ऐसा हर्ष फैल जाता था। पंचपरमेष्ठी का साक्षात्कार करवाकर गुरुदेव भाव से कहते थे कि अहो, भगवंतों! आपको अपने ज्ञान में विराजमान (स्थापित) किया है अर्थात् मैं भी आपकी श्रेणी में बैठनेवाला हूँ। अनंत अरिहंत-सिद्ध, तथा जगत के

पंचपरमेष्ठी भगवंतों की जाति को एकत्रित करके मोक्ष का बड़ा उत्सव करते हैं... इसमें हे पंचपरमेष्ठी भगवंतों! इस मुक्ति-मंडप में आप पधारो... आपके पधारने से हमारी शोभा में वृद्धि होगी... इसप्रकार मोक्ष का मंडप बनाकर महा मंगलपूर्वक प्रवचनसार-शास्त्र प्रारंभ किया है... इसमें आचार्यदेव ने अरिहंतों का मार्ग प्रसिद्ध किया है, तथा इसप्रकार परमागम द्वारा जगत को परम आनंद की भेंट प्रदान की है।

जलगाँव में फागुन सुदी ७ को नूतन जिनमंदिर का शिलान्यास श्री नवनीतभाई सी. जवेरी के सुहस्त से हुआ था; उस अवसर का चित्र। चित्र में श्री नवनीतभाई के आसपास श्री ब्रजलालभाई तथा श्री पोपटलाल मोहनलाल वोरा खड़े हैं।

विविध समाचार

नागौद (सतना, म.प्र.)—निवासी कवि श्री 'सुधेशजी' ने सोनगढ़ आकर परम जिज्ञासा सहित पूज्य स्वामीजी का परिचय एवं अपूर्व तत्त्वज्ञान की शैली का प्रत्यक्ष अनुभव किया। उन्होंने नागौद से 'समयसार के नंदनवन में चौबीस घंटे' नामक एक लेख भेजा है, जो चार पृष्ठ का है। जिसके अंत में श्री सुधेशजी लिखते हैं कि आत्मतत्त्व के जिज्ञासुजन एकबार इस समयसार के नंदनवन में सर्वज्ञकथित धर्म की जिज्ञास की दृष्टि से परिभ्रमण कर इसकी सुवास से अपने अंतरजगत को सुवासित करें।

ललितपुर—अटामंदिर जी (समाचार देर से आये हैं) पंडित श्री भगवानदासजी शास्त्री रायपुर निवासी सत्प्रयत्न से यहाँ जैन समाज में अपूर्व धर्मचेतना जागृत हुई। कार्तिक अष्टाह्निका पर्व में ब्रह्मचारी हेमराजजी तथा पंडित फूलचंद्रजी सि. शास्त्री की प्रेरणा से रात्रि में जैनधर्म शिक्षण-शिविर चालू किया; समाज के अग्रणी शेठ श्री जिनेश्वरदासजी टडैया, श्री हजारीलालजी टडैया, पंडित श्री परमेष्ठीदासजी आदि का पूर्ण सहयोग मिला। ब्रह्मचारी हेमराजजी अपनी पूर्व स्वीकृतियों के वश बीना, गुना, भोपाल आदि स्थानों पर जायेंगे और तत्पश्चात् ललितपुर के विशेष निवेदन को स्वीकार करके यहाँ पधारने का आश्वासन दिया है, जिसके लिये सारी समाज आभारी है। *—हरिश्चंद्र जैन, एम.ए., अध्यक्ष*

अभूतपूर्व धर्मप्रभावना

गौहाटी (आसाम)—यहाँ पर कार्तिक अष्टाह्निका का महापर्व पर श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के आमंत्रण पर श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर से माननीय पंडित श्री हुकमचंदजी शास्त्री एम.ए. पधारे। प्रतिदिन दो घंटे सुबह-शाम अध्यात्मरस से भरे भावभीने रोचक शैली से प्रवचन हुए, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त, कर्ता-कर्म, पुण्य-पाप, हेय-उपादेय आदि विषयों पर बड़े सुंदर ढंग से युक्तिसंगत, आगमानुकुल विवेचन किया। सर्वज्ञ-वीतराग कथित आध्यात्मिक रहस्य समझने के लिये श्रोताओं में हमेशा भारी आकर्षण रहा। सोनगढ़ के संबंध में लोगों की अनेक भ्रामक मान्यताओं का समुचित समाधान किया।

आशातीत विशेष धर्मप्रभावना हुई। अंत में पंडितजी को भावभीनी विदाई के समय 'सम्मानपत्र' भेंट किया गया।

मंत्री नेमीचंद पाटनी

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, गौहाटी

ग्वालियर (म.प्र.)—अष्टाह्निका पर्व के उपलक्ष में सिद्धचक्र विधान, पूजापाठ महोत्सव बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। जिसमें धर्म प्रभावना को ध्येय बनाकर धार्मिक प्रवचन हेतु विदिशा निवासी श्री ज्ञानचंदजी वाणीभूषण को बुलाया गया। प्रतिदिन तीन बार उनके प्रवचन हुए, बहुत सरलता से जिनवाणी का रहस्य समझाया, जिसमें बड़ी संख्या में, नर-नारियों ने धर्मलाभ लिया। अंत में पूज्य स्वामीजी द्वारा हो रही अपूर्व धर्मप्रभावना तथा सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में कारण ऐसे अपूर्व उपदेश की महिमा एवं आभार प्रदर्शित किया। ४४ संख्या में आतमधर्म के ग्राहक बनाये, एवं स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई।

अंतिम दिन रथयात्रा हुई, जिसमें लोगों का उत्साह देखते ही बनता था। ३००० के करीब नर-नारियों एवं बच्चों ने भाग लिया। रात्रि को आम सभा हुई। बड़ी संख्या में समाज ने भाग लिया। श्री ज्ञानचंदजी को समाज की ओर से अभिनंदन पत्र भेंट किया गया जो आर.डी. जैन वकील सा. ने पढ़कर सुनाया। आपने अपने संक्षिप्त भाषणा में कहा कि—पूज्य कानजीस्वामी ने बहुत बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है, जो अनेक जीवों को जिनवाणी का रहस्य समझाकर सही मार्ग बतलाया है।

—धन्नालाल जैन

विदिशा (म.प्र.) जैन समाज के विशेष अनुरोधवश ब्रह्मचारी हेमराजजी यहाँ एक महीने तक धर्म का अपूर्व लाभ देकर समाज में स्थायी और विशेष धर्म प्रभावना की है। सुबह ४.०० बजे से ६.०० बजे तक द्रव्यसंग्रह-शिक्षण, तथा ७.०० से ८.०० तक मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन, दोपहर को तत्त्वचर्चा, शंका-समाधान, रात्रि प्रवचन में रत्नकरण्ड श्रावकाचार द्वारा निश्चयव्यवहार की संधि और वीतरागता के प्रयोजन सहित सभी जिज्ञासुओं को धर्म का वास्तविक स्वरूप समझाकर अपूर्व लाभ दिया।

— ज्ञानचंद जैन मंत्री

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल विदिशा (म.प्र.)

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल विहार का कार्यक्रम (वि.स. २०२६)

ग्राम	दिन	तारीख	दिवस	माईल
राजकोट	शुक्रवार	६-२-७०	१	८९
जामनगर	शनिवार से गुरुवार	७ से १२/२	६	५६
जसदण	शुक्र-शनि	१३-१४/२	२	९६
जेतपुर	रवि-सोम-मंगल	१५-१६-१७/२	३	४२
गोंडल	बुध-गुरु-शुक्र	१८-१९-२०/२	३	१९
जोरावरनगर	शनिवार	२१-२-७०	१	९०
अहमदाबाद	रविवार	२२-२-७०	१	८४
पालेज	सोमवार	२३-२-७०	१	१०२
सोनगढ़ (व्यारा)	मंगलवार	२४-२-७०	१	९५
धूलिया	बुधवार	२५-२-७०	१	८९
एदलाबाद	गुरुवार	२६-२-७०	१	९८
आकोला	शुक्रवार	२७-२-७०	१	९२
कारंजा	शनि-रवि	२८/२ से १/३	२	४५
शिरपुर (अंतरिक्ष-पार्श्वनाथ)	सोमवार से सोमवार	२/३ से ९/३ (फा.सु. २ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा)	८	६०
मेहकर	सोमवार	९-३-७०	रात	३५
जलगाँव	मंगल-बुध-गुरु-शुक्र-रवि	१० से १५/३ (फा. सु. ६ वेदी प्रतिष्ठा)	६	१२५

मलकापुर	सोम–मंगल–बुध–गुरु	१६–१७–१८–१९/३	४	५६
खंडवा	शुक्र–शनि	२०–२१/३	२	८२
सिद्धवरकूट	रवि–सोम	२२–२३/३ (वेदी प्रतिष्ठा)	२	५४
रतलाम	मंगल–बुध	२४–२५/३	२	८५
दाहोद	गुरु–शुक्र	२६–२७/३	२	११४
अहमदाबाद	शनि–रवि	२८–२९/३	२	१३०
वढवाण	सोम–मंगल	३०–३१/३	२	८२
राजकोट	बुध से बुध	१/४ से १५/४	१५	६९
मोरबी	गुरु–शुक्र	१६–१७/४	२	४०
वांकानेर	शनि–रवि	१८–१९/४	२	१८
लाठी	सोम–मंगल	२०–२१/४	२	८८
कुंडला	बुध–गुरु–शुक्र–शनि	२२ से २५/४	४	४४
कानातलाव	रवि–सोम–मंगल–बुध	२६ से २९/४ (वेदी प्रतिष्ठा)	४	४
लाठी	गुरुवार	३०–४–७०	१	४८
भावनगर	शुक्र से शुक्र	१/५ से ८/५	८	६४
	(वै.सु. २ जन्मजयंती वै.सु. ३ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा)			
सोनगढ़	शनिवार	९–५–७०		१९

भेंट-पुस्तक वीतराग-विज्ञान (भाग-१)

जो सज्जन आत्मधर्म (हिन्दी) के संवत् २०२५-२६ (वैशाख २०२५ से चैत्र २०२६) तक ग्राहक होंगे, उन सभी को श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट के प्रमुख श्री नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी की ओर से वीतराग-विज्ञान पुस्तक (छहढाला की पहली ढाल पर पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचन) भेंट दी जायेगी।

भेंट-पुस्तक प्राप्त करने की विधि

(१) निम्नलिखित नगरों के दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडलों को यह भेंट पुस्तक रेलवे द्वारा भिजवा देंगे। मुमुक्षु सदस्य अपने नगर के मंडल से ही यह भेंट-पुस्तक कूपन देकर प्राप्त कर लेने की कृपा करें।

अशोकनगर, अलवर, आगरा, इंदौर, उदयपुर, उज्जैन, कोटा, खंडवा, गुना, गौहाटी, जयपुर, दिल्ली, भोपाल राघौगढ़, विदिशा, सहारनपुर, सागर और सोनगढ़ इन मुमुक्षु मंडलों को भेंट-पुस्तक ३१ जनवरी तक मिल जायेगी।

(२) शेष आत्मधर्म के ग्राहक निम्न पते पर कूपन पूरा भरकर एक लिफाफे में ०.२० बीस पैसे के डाक-टिकट साथ में भेज देवें। आपका कूपन मिलने के बाद भेंट-पुस्तक रवाना कर दी जायेगी। कृपया आप अपना पूरा नाम और पता, जिला, तहसील सहित सही लिखें।

दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) (गुजरात राज्य)

[कूपन यहाँ से काटकर पता लिखकर भेजिये]

BOOK-POST

TO, _____

_____

_____

_____

हिन्दी साहित्य प्रकाशन संबंधी आवश्यक विज्ञप्ति

मुमुक्षु भाई-बहिनों को सूचित करते हुए हर्ष होता है कि— श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट ने निम्नोक्त पुस्तकें प्रकाशित करने का विचार किया है। इसलिये जिन नगरों में मुमुक्षु मंडल हैं, वे पत्र द्वारा सूचित करें कि उन्हें किस पुस्तक की कितनी प्रतियों की आवश्यकता है। मुमुक्षु मंडलों की ओर से पर्याप्त संख्या में आर्डर आने पर पुस्तकें छपाने की व्यवस्था की जायेगी, इसलिये शीघ्र हमें सूचित करें।

मुमुक्षु मंडलों के अध्यक्ष महानुभावों से निवेदन है कि वे अपने मंडल के लिये आवश्यक पुस्तकों की बिल्कुल सही संख्या सूचित करें। पुस्तकों के लिये कोई अग्रिम राशि भेजने की आवश्यकता नहीं है; परंतु इस बात की गारंटी दें कि आपका मंडल इतनी प्रतियाँ अवश्य खरीद लेगा।

जिन नगरों में मुमुक्षु मंडल नहीं हैं, वहाँ के मुमुक्षु व्यक्तिगत रूप से हमें अपनी आवश्यकतानुसार पुस्तकों की संख्या लिखें।

संस्था के नियमानुसार पुस्तकों का मूल्य लागत से कम रखा जायेगा। किस पुस्तक का कितना मूल्य रखा जाये, वह बाद में तय किया जायेगा। अभी निम्नोक्त तेरह पुस्तकें प्रकाशित करने का विचार है:—

(१) श्री समयसार शास्त्र (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत)

(२) श्री श्रावकधर्म प्रकाश (श्री पद्मनंदि-पंचविंशतिका के देशव्रतोद्योतन अधिकार पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(३) श्री अनुभव प्रकाश (श्री दीपचंदजी कासलीवाल कृत)

(४) श्री ज्ञानचक्षु (श्री समयसार गाथा ३२० की जयसेनाचार्यकृत 'तात्पर्यवृत्ति' टीका पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(५) सम्यग्दर्शन भाग-१ (स्वामीजी के प्रवचन)

(६) भेदविज्ञानसार (समयसार के अन्तिम भाग पर प्रवचन)

(७) ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव (प्रवचनसार के तथा समयसार गाथा ३०८ से ३११ तक के प्रवचन)

(८) आत्मवैभव (समयसार ४७ शक्तियों पर प्रवचन)

(९) समयसार प्रवचन, भाग १-२ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(१०) समयसार प्रवचन, भाग ३ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(११) समयसार प्रवचन, भाग ४ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(१२) समयसार प्रवचन, भाग ५ (पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)

(१३) दसलक्षण धर्म (पद्मनन्दि पंचविंशतिका तथा स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा के प्रवचन)

प्रेषक—

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	" " " भाग-२	१.००
	" " " भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२०	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
	पाँच पुस्तकों का कुल मूल्य	२.६०
२६	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२७	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२८	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)